सार्वभौम सम्राट बन गया। वह प्रजा-पालन में तत्पर शासक था। उसकी बुद्धि में विचार-परिवर्तन हुआ और उसने वैष्णवधर्म छोड़कर क्षपणकों (बौद्ध या जैन सन्यासियों) के प्रभाव में आकर बौद्धधर्म स्वीकार कर लिया। नागभट द्वितीय का पितामह देवशक्ति परम वैष्णव था। आम राजा की रत्नगंगा नामक पुत्री थी। एक बार कान्यकुब्ज देश में बाहर से इंद्रसूरि (नामक जैन साधु) आया। उसके प्रभाव से रत्नगंगा का विवाह ब्रह्मावर्त के राजा कुम्भीपाल (या कुमारपाल) के साथ कर दिया गया। इस प्रकार आम के दरबार में जैनों का प्रभाव बढ़ता गया। ब्राह्मणों को दान देना भी बन्द कर दिया गया और विप्रों के राजशासन से दिये हुए दानों (अग्रहारों) का भी लोप हो गया (लब्धशासनका विप्रा लुप्तस्वाम्या अहर्निशम्)[१]। इससे आकुलित होकर ब्राह्मणों ने राजा आम से सब कहा जो जैनियों से घिरा हुआ कन्नौज में शासन कर रहा था। उनका दामाद कुमारपाल भी जैन धर्म का प्रचार कर रहा था[२]। जैनियों के प्रभाव के विरुद्ध ब्राह्मणों ने विद्रोह कर दिया और अन्त में उनकी विजय हुई[३]। इस प्रकार त्रयीधर्म (वेदधर्म) की महिमा पुनः स्थापित हुई तथा न्याय मार्ग प्रवर्तक कनौजिया ब्राह्मणों (महोदयाश्च ते विप्रा न्यायमार्गप्रवर्तकाः) की भी प्रतिष्ठा स्थापित हुई।[४] राजा आम का आधिपत्य धर्मारण्य (मही और साभ्रमती नदियों की घाटियों में खम्भात की खाड़ी के उत्तर-पूर्व स्थित) तक फैला था।

इस प्रकार आम के राज्यकाल में बढ़ते हुए जैनों (नग्न-क्षपणकों) का प्रभाव कम हुआ और ब्राह्मण धर्म का गौरव बढ़ा। जैनग्रन्थों—बप्पभट्टि चरित और प्रभावक चरित—से कन्नौज पर जैनों का प्रभाव परिलक्षित होता है। इस प्रकार स्कन्द पुराण में वर्णित कान्यकुब्ज का बली सार्वभौम राजा आम नागभट द्वितीय ही था।

रामभद्र

नागभट द्वितीय की मृत्यु के बाद उसका राम नामक पुत्र (तज्जन्मा राम नामा)[५] राजा हुआ। मिहिर भोज के बराह लेख से ज्ञात होता है कि

१—स्कन्द पु०, ३/२/३६/४७
२—वही, ३/२/३६/४८-६८
३—वही, ३/२/अ० ३६-३९
४—वही, ३/२/३९/३२
५—ग्वा० ले०, श्लोक १२, पंक्ति १

महाराज श्री नागभट देव और श्रीमतीसटा देवी से परमादित्भक्त महाराज श्री रामभद्र का जन्म हुआ था[१]।

भोज के ग्वालियर अभिलेख में राम (या रामभद्र) के गुणों और चरित्र की अत्यंत प्रशंसा की गई है। परन्तु आधुनिक विद्वानों ने न संस्कृत अभिलेख ही देखा और न उनसे इसका अनुवाद ही देखा गया। मूल अभिलेख में निम्नांकित वर्णन मिलता है—

यस्यात्मवैभवमतीन्द्रियमाकुमारमाविर्बभूव भुवि विश्वजनीनवृत्तेः ।।
तज्जन्मा रामनामा प्रवरहरिबलन्यस्त भूभृतप्रबन्धै-
रावध्नन्वाहिनीनां प्रसभमधिपतीनुद्धतक्रूरसत्वान् ।
पापाचारान्तरायप्रमथनरुचिरः सगतः कीत्तिदारै-
स्त्राता धर्मस्य तैस्तैस्समुचितचरितैः पूर्ववन्निर्वभासे ।।
अनन्यसाधनाधीनप्रतापाक्रान्तदिङ्मुखः ।
उपायैस्सम्पदां स्वामी यः सत्रोडमुपास्यत ।।
अर्थिभिर्विनियुक्तानां सम्पदां जन्मकेवलं ।
यस्याभूत्कृतिनः प्रीत्यै नात्मेच्छा विनियोगतः ।।
जगद्वितृष्णुः स विशुद्धसत्त्वः प्रजापतित्वं विनियोक्तुकामः ।
सुतं रहस्यव्रतसुप्रसन्नात्सूर्यादवापन्मिहिराभिधानं[२] ।।

इसका अंग्रेजी अनुवाद इस प्रकार है—

"(The great Rama), the protector of virtue, after having forcibly bridged over the oceans (literally the lords of rivers), full of exceedingly cruel animals, by means of continuous chain of rocks placed by the best monkey force looked bright by having killed the evil doers who served as obstacles and (as he thereby) got (literally, was joined by) his wife and renown. His (Nagabhata's) son Rama by name, also shone forth like his (homonymous) predecessor by similar worthy deeds, for he, the defender of religion, too, had the haughty and cruel commanders of armies forcibly bound down by (his subordinate) kings who had

---

१—बराह लेख, पंक्ति ४-५

२—ग्वा० लेख, श्लोक ११-१५

the best cavalry under their charge; and looked radiant by having destroyed the obstacles caused by the evil doers (and as he thus) attained the fame which was unto him even as a consort."

"That lord of prosperity, who had overpowered the point of compass by means of valour (alone), unsupported by the other expedients, was yet demurely waited upon by the other means."

"The production of the wealth of that successful one was merely a source of delight; it was at the disposal of the supplicants, but never a means to satisfy his own desire."

"A pure soul, averse from the world he obtained a son by name Mihira, by (the favour of) the sun, propitiated by mysterious rites, in order to dispose of the lordship over his subject."

इस प्रकार ग्वालियर लेख में रामभद्र की राम (दाशरथी) से तुलना करते हुए बताया गया है कि जिस प्रकार रामचन्द्र ने समुद्र को बांध कर क्रूर शत्रुओं का वध कर जानकी जी को प्राप्त किया और (पापी राक्षसों का बध कर) धर्म की रक्षा की। उन्होंने किसी अन्य राजा की सेना का सहारा न लेकर (अनन्यासाधनाधीन) अपने ही प्रताप से (दक्षिण) दिशा को आक्रांत कर उपाय-नीति द्वारा स्वामी (प्रभु) बन गये। इसी प्रकार रामभद्र ने भी उपायों (साम, दाम, दण्ड, भेद) के द्वारा अपना प्रभुत्व स्थापित किया। उसने भी क्रूर पापियों को मार कर धर्म की रक्षा की। विशुद्धसत्व वाले रामभद्र ने अनेक रहस्यों तथा व्रतों को करते हुए सूर्य भगवान को प्रसन्न कर राज्य-शासन चलाने के लिये मिहिर नामक पुत्र प्राप्त किया।

के० यम० मुंशी ने बताया कि ग्वालियर प्रशस्ति में रामभद्र की परम्परागत प्रशसा की गयी है और यह सत्य है कि वह प्रतिहार साम्राज्य की स्थापना में सफल न हुआ। उसके शासनकाल में प्रतिहार शक्ति क्षीण हुई[1]।

डॉ० त्रिपाठी ने बताया कि जैन ग्रन्थ प्रभावक चरित के आधार पर रामभद्र वि० स० ८६० = ८३३ ई० में राजसिंहासन पर बैठा। भोज को

१—ग्लो० गु, भाग १, पृ० ६४

प्रारम्भिक तिथि ८३६ ई० थी। अतः रामभद्र का अल्पकालीन शासन था। परन्तु ४५० वर्षों के बाद लिखे गये जैन ग्रंथ पर जिसमें बहुत ऊट पटांग बातें लिखी हुई हैं, विश्वस्त नहीं हैं। सम्भव है कि नागभट द्वितीय कुछ पहले मरा हो। अतः रामभद्र लगभग ८२५ ई० में गद्दी पर बैठा।[१]

ग्वालियर प्रशस्ति का विवेचन करते हुए डॉ० त्रिपाठी कहते हैं कि उसके सामन्त राजाओं ने अपनी अश्वसेना द्वारा घमंडी और क्रूर सेना-नायकों को बन्दी बना लिया था। परन्तु यह निश्चित करना कठिन है कि ये शत्रु कौन थे। डॉ० आर० सी मजूमदार के अनुसार ये शत्रु बंगाल के शासक पाल ही थे जिन्होंने इस समय उत्तरी भारत पर आक्रमण किये।[३]" डॉ० त्रिपाठी भी इस मत को मानते हैं, क्योंकि राष्ट्रकूट शासक अमोघ वर्ष प्रथम दक्षिण में फंसा था। डॉ० त्रिपाठी कहते हैं कि रामभद्र के काल में कोई आपत्ति अवश्य आयी।....उसको दुष्ट पापाचारियों का बध करने वाला कहा गया है। वह अकेले कुछ न कर सका अतः उसे अपने सामन्तों से सहायता लेनी पड़ी।....यह ठीक-ठीक नहीं मालूम है कि उसने किस प्रकार अपने राज्य की सुरक्षा की।[१]

डॉ० पुरी ने कहा है कि 'वह दुष्टचरित शासक था जिसने अपना जीवन और राज्य इसी चरित्र हीनता के कारण खोया। उसके अल्प शासन-काल में साम्राज्य के दूरस्थ प्रान्त टूटने लगे और उसके शत्रुओं, विशेषकर, देवपाल को अपने राज्य का विस्तार करने का सुअवसर मिला। क्रूरों का प्राबल्य भी उसके दुश्चरित्र के कारण ही हुआ। उसकी दुर्बलता के कारण ही उसकी प्रजा और उसके सम्बन्धी भी उसके विरोधी बन गये, जैसा कि जैन आचार्य बताते हैं।[४] परन्तु अभिलेखों के साक्ष्य पर विश्वास करते हुये डॉ० के० यम० मुंशी ने सत्य ही कहा है—

"Ramabhadra was brave and virtuous, pure soul, opposed to worldliness, and a defender of faith.[५]"

१—ग्लो० गु० पृ० ६३

२—हि० क०, पृ० २३६

३—वही, पृ० २३७

४—गु० प्र०, पृ० ४६

५—ग्लोरी दैट वाज़ गुर्जर देश, पृ० १२१

भोजराज

कान्यकुब्जे महादेशे राजा भोजेति विश्रुतः ॥

प्राचीन समय में कान्यकुब्ज नामक महादेश में भोज नामक एक प्रसिद्ध राजा हुआ। रामभद्र का सुपुत्र प्रसिद्ध सम्राट मिहिर भोज था जिसकी प्रशंसा स्कन्द पुराण, अभिलेखों और मुस्लिम लेखकों के विवरणों में की गयी है। उसने विजयों द्वारा विशाल साम्राज्य की स्थापना कर कान्यकुब्ज के महोदय की उत्तरोत्तर वृद्धि की। वास्तव में मिहिर भोज प्राचीन भारतीय इतिहास में एक महान् प्रभाव शाली शासक था जिसके राज्यकाल में कान्यकुब्ज एक महान् देश के नाम से प्रसिद्ध हो गया। वहां अन्धकार (अव्यवस्था) को मिटाने वाला सूर्य (मिहिर), और डूबती हुई पृथ्वी को बचाने वाला विष्णु (आदिवराह) था। उसके इतिहास को जानने के निम्नलिखित साधन हैं—

अभिलेख

भोज और उसके वंशजों के अभिलेखों से उसके इतिहास पर प्रचुर प्रकाश पड़ता है।

बराह ताम्रपत्र लेख (बिक्रम सं० ८९३=८३६ ई०) की प्राप्ति बराह कानपुर प्रान्त (कानपुर-कालपी मार्ग पर कानपुर से २३ मील दूर अकबरपुर के ४ मील पूर्वस्थित) से हुई थी। यह लेख इस समय लखनऊ म्यूज़ियम में है। इस अभिलेख में कान्यकुब्ज भुक्ति (प्रदेश) में स्थित महोदय (कन्नौज) का उल्लेख है। यह भोज की सेना पर प्रकाश डालता है, जिसमें नावें, हाथी, घोड़े, रथ और पदाति (नौहस्त्यश्व-रथपत्तिसम्पन्नस्कन्धावारात्) सम्मिलित थे। इसमें महाराज श्री देवशक्ति से लेकर महाराज श्री भोज तक की वंशावली भी दी गयी है।

परम वैष्णवो महाराज श्री देवशक्तिदेव=श्री भूयिकादेवी
|
परम माहेश्वरो महाराज श्री वत्सराजदेव=श्री सुन्दरी देवी
|
परम भगवतीभक्तो महाराज श्री नागभटदेव=श्रीमतीसटादेवी
|
परमादित्यभक्तो महाराज श्री रामभद्र देव=श्रीमदप्पा देवी
|
परम भगवतीभक्तो महाराज श्री भोजदेवः

इसी अभिलेख से यह भी ज्ञात होता है कि कालञ्जर मण्डल कान्यकुब्ज (भुक्ति=कमिश्नरी) में सम्मिलित था। इस लेख में यह बताया गया है कि

जो दान परमेश्वर शर्ववर्म के समय में दिया गया था और जिसका अनुमोदन महाराज श्री नागभट देव द्वारा भी किया गया था, वही दान महाराज श्री रामभद्र देव के राज्य काल में राज्य के एक अधिकारी (व्यवहारी) के दोष के कारण (व्यवहारिणो वैगुण्यात्) बन्द हो गया था । इसलिये पिता के पुण्य को बढ़ाने के लिये भोज ने शासकीय दोष को जानकर इसे फिर से चला कर ठीक कर दिया । विद्वानों—त्रिपाठी, पुरी आदि ने इसे भोज के पिता रामभद्र की दुर्बलता बताकर यह मत प्रतिपादित किया कि कालञ्जर मण्डल में प्रतिहारों के अधिकार का लोप हो गया था, जिसे भोज ने पुनः स्थापित किया । अभिलेख स्पष्ट कहता है कि व्यवहारी की भूल या प्रमाद के कारण यह अग्रहार ब्राह्मणों को दान में दिया गया था । इस क्षेत्र में न तो किसी राजशक्ति के अधिकार होने की बात ही उठती है, न अभी चन्देलों के उत्कर्ष का ही प्रश्न उठता है । चन्देलों द्वारा स्वतन्त्रता घोषित करने का प्रमाण नहीं है । यह अभिलेख स्पष्ट कहता है कि कालञ्जर मण्डल (बुन्देल खण्ड) कान्यकुब्ज भुक्ति का एक भाग था । जैन साक्ष्य-बप्पभट्टिचरित तथा प्रभावक चरित से भी सिद्ध होता है कि गोपगिरि (दुर्ग) = ग्वालियर पर आम (नागभट द्वितीय) और भोज का अधिकार अक्षुण्ण था ।

दौलतपुर जोधपुर, प्रान्त, (राजस्थान ताम्रपत्र लेख)
(वि० सं० ९०० = ८४३ ई०) में भी पुराने दान का नवीकरण करने का उल्लेख है । इस लेख में भी प्रतिहार वंशावली दी गई है ।

देवगढ़ (झांसी प्रान्त, उत्तर प्रदेश) जैन स्तंभ लेख (वि० सं० ९१९ = ८६२ ई०) एक स्तंभ का उल्लेख मिलता है ।

ग्वालियर के दो लेखों (वि० सं० ९३२ और ९३३) से गोपाद्रि (ग्वालियर) पर रामभद्र का अधिकार परिलक्षित होता है । उसके बाद भोज का भी अधिकार बना रहा ।

आहार बुलन्दशहर प्रान्त और पिहोवा (प्राचीन पृथूदक, करनाल प्रान्त हरियाना प्रदेश कुरुक्षेत्र के निकट) लेख भी उसके राज्य पर प्रकाश डालते हैं ।

परन्तु सबसे महत्वपूर्ण लेख भोज की सागरताल (ग्वालियर) प्रशस्ति है जिसमें उसके चरित्र, व्यक्तित्व और उपलब्धियों का वर्णन किया गया है ।

इसके अतिरिक्त उसके देहली और भावनगर म्यूजियम लेख मिले हैं । उसके वंशजों और सामन्तों के लेखों से भी उसके राज्य पर प्रकाश पड़ता है । इन अभिलेखों की प्राप्ति ही भोज की महानता का प्रमाण है ।

राजतरंगिणी व अरब लेखक सुलेमान के वर्णन से भी भोज के राज्य पर प्रकाश पड़ता है। परन्तु स्कन्द पुराण में उल्लिखित भोजवृत्तान्त की ओर विद्वानों का ध्यान नहीं गया।

स्कन्दपुराण का भोजवृत्तान्त

स्कन्द पुराण के वस्त्रापथ माहात्म्य के आधार पर डॉ० हेमचन्द्र रायचौधरी ने १६२६ ई० में यह बताया था कि कन्नौज के शासक भोज का सौराष्ट्र से सम्बन्ध था और उसने अपने पुत्र को सिंहासन सौंप कर राज्य त्याग दिया।[१]

डॉ० रायचौधरी ने भी पूरी कहानी न पढ़ी और न बाद के शोध कर्ताओं—त्रिपाठी और पुरी—ने ही इस वृत्तान्त को पढ़ने का कष्ट किया। स्कन्दपुराण को बिना पढ़े ही उन्होंने भोज के राज्य-त्याग के मत का विवेचन कर इसे अमान्य ठहराया। स्वयं स्कन्दपुराण ही कहता है कि भोज ने राज्य-त्याग नहीं किया था। ग्रंथ को देखे बिना ही उसके विषय में मत बनाना शोधकों के प्रमाद का परिचायक है—

डॉ० त्रिपाठी कहते हैं—

"Much of the story is no doubt absolutely unworthy of credence......"[२]

डॉ० पुरी भी कहते हैं—"It is needless to go into the story.... "The story is incredible......"[३]

वस्त्रापथ माहात्म्य का अधिकांश भाग—अध्याय ६ से १६ वें (अन्तिम) अध्याय तक भोज और सारस्वत मुनि का संवाद-भोज के दरबार में ही हुआ। सम्पूर्ण प्रभासखण्ड ही कान्यकुब्ज के दरबार में संकलित किया गया प्रतीत होता है। प्रभास प्राचीन और प्रसिद्ध तीर्थ था। परन्तु भोज की उपाधि 'प्रभास' ही प्रभास के माहात्म्य की साक्षी है। सारस्वत भोज-कालीन विद्वान था जिसने भोज को राज्य-त्याग करने से रोका और कहा कि घर में

१—स्टडीज इन इण्डियन ऐन्टीक्विटीज, पृ०, १५०—१५५

२—हि. क., पृ. २४५

३—हि. गु. प्र., पृ. ५८

भी देवता, जल, तिल, और कुश आदि हैं। बाहर जाने से अपने मन को हटाओ—

गृहेऽपि देवा हरविष्णुमुख्या जलानि दर्भा नृपते तिलाश्च।
अनेकदेशांतरदर्शनार्थं मनो निवार्य नृपते त्वयेति ॥[१]

जैसे ही राजा ने राज्य-त्याग का विचार किया, मुनि सारस्वत ने राजा को यात्रा के लिये राज्य-भार छोड़ने से रोका (निवारयामास मुनिर्नरेन्द्रम्)[२]। कारण स्पष्ट था जिसके लिए भोज को अपना भार नहीं छोड़ना था। मुस्लिम आक्रमण प्रबल थे और देशद्वार की रक्षा करना प्रतिहार भोज का मुख्य धर्म था। राजपूतों, और तुरुष्कों (तुर्कों) के संघर्ष को देव-दानव युद्ध के नाम से वर्णन किया गया है। भोज को नारदीय-नीति का वर्णन करते हुए शत्रुओं के प्रति आक्रामक और उग्र नीति अपनाने का आदर्श दिया गया है। कहा गया है कि शत्रुओं के प्रति मृदुता से काम न ले और उनको पूर्ण रूप से नष्ट कर डाले (हत्वा शत्रूनशेषयेत्)[४]। मुस्लिम लेखकों और ग्वालियर प्रशस्ति से जानते हैं कि असुरों, तुरुष्कों और म्लेच्छों के प्रति भोज की नीति कितनी कठोर थी। इस प्रकार स्कन्दपुराण के वस्त्रापथ माहात्म्य से महाराज श्री भोज देव के व्यक्तित्व, गुणों, चरित्र और कार्य पर महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है। साहित्यिक दृष्टि से भी कान्यकुब्ज, जो कभी जैनों के प्राबल्य से वेद-विमुख हो गया था, ब्राह्मण धर्म, संस्कृति और विद्या का महान् केन्द्र बन गया। यहीं नैमिषारण्य के ऋषियों का समवाय (समाज) हुआ था जिसमें पौराणिकी संहिता (प्रभास खंड) और दिव्यभाषायुक्त, वेद संमत' पंचसंधि-षडलंकार भूषित, रस-गुण-रंजित काव्य और वेदांत तथा भागवत (वैष्णव) दर्शन पर महत्वपूर्ण कार्य हुआ।

भोज का व्यक्तित्व और चरित्र

भोज ऐसे प्रभावशाली महान शासक का व्यक्तित्व भी कितना महान था—लम्बी-लम्बी भुजाएँ (दीर्घबाहुः), बड़ी-बड़ी आँखें (विशालाक्षो), विद्वान और प्रशस्तवचन तथा प्रियवक्ता (विद्वान्वाग्मी प्रियंवदः)[५] था। इससे ज्ञात होता है कि वह पराक्रमी (दीर्घ भुजाएं), प्रज्ञावान् (विशालाक्ष) और गुणज्ञ विद्वान

१. स्कन्द पुराण. ७. २. १०. १६
२. वही, ७. २. १०. १५
३. वही, ७. २. १०. १८
४. वही, ७. २. १७. ६३
५. वही, ७. २. ६. २१ (१)

तथा दक्ष व्यक्ति था जिसका शरीर सभी महापुरुषों के लक्षणों से सुशोभित था। वह बहु-आश्चर्य को भी देखने वाला था।[1] उसकी ग्वालियर प्रशस्ति में भी उसके व्यक्तित्व और गुणों की प्रशंसा की गयी है। वह यशस्वी, शान्तात्मा तथा लोक-कल्याण में निपुण था। इसलिये राजलक्ष्मी ने उसका वरण किया था। परन्तु इतना होने पर भी उसमें मद (अहंकार) का दोष (राज-व्यसन) न था। गुणी (विद्वान) लोगों के प्रति प्रेमार्द्र था और उसकी वाणी सत्य और प्रिय थी।[2] उसने कुमार (कार्तिकेय) के समान मातृ-शक्ति की सहायता से (भोज परमभगवती भक्त था) घोर असुरों को अपने अस्त्रों से सबक सिखाया था कि यदि भारत पर क्रूर कुदृष्टि से आक्रमण कर अहित किया तो यही दुर्गति होगी। इसीलिये वह 'जगदहितविच्छेदनिपुण: थे। भोज का यह एक अद्भुत (महान्) कर्म था—

"कुमारैव विद्यानां वृन्देनाद्भुतकर्मणा।
य: शशासासुराघोशान्स्वैर्णेनास्त्रैव वृत्तिना।।[3]

उस राजा के प्रभुत्व के लिये अक्षपटल पर ब्रह्मा ने ही सम्पूर्ण विश्व की सम्पदाओं को उसका मुह देख कर लिख दिया था।[4] इस प्रकार स्कन्द पुराण में वर्णित गुणों का साम्य अभिलेखों से भी होता है। संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि पूर्व मध्यकालीन युग के उस आपत्ति काल में भोज ही ऐसा महान सम्राट था जिसने उत्तरी भारत में सौराष्ट्र से लेकर बिहार तक शान्ति और व्यवस्था स्थापित की थी। इससे सांस्कृतिक उन्नति भी हुई। स्मिथ की धारणा है —

Ramabhadra's son Mihira, usually known by his title Bhoja, enjoyed a long reign....and beyond question was a

---

१. स्कन्द पु०, ७/२/६/२१

२. भोज का ग्वलियर शिला लेख, श्लोक, १७ :

यशस्वी शांतात्मा जगदहितविच्छेद निपुण:।
परिष्वक्तो लक्ष्म्या न च मदकलंकेन कलित:।
बभूव प्रेमार्द्रो गुणिषु विषय: सूनृतगिराम्।

३. वही, श्लोक, २२

४. वही, श्लोक, २३

very powerful monarch, whose dominions may be called an 'empire' without exaggeration."[1]

भोज की उपाधियाँ

स्मिथ ने ठीक ही कहा है कि उसका नाम मिहिर (मिहिराभिधानं) था जिसने भोज की उपाधि ग्रहण की। उसके ग्वालियर लेख में बताया गया है कि अगस्त्य की भाँति ही बढ़े हुए विन्ध्य को (आक्रमण) द्वारा पार कर राजाओं से भोग (कर) को प्राप्त करने के कारण वह सम्राट (प्रभुः) भोज कहलाया[2]। वह आदिवराह (विष्णु का अवतार) था। ग्वावियर प्रशस्ति में ही उसे अति तेजस्वी—प्रज्वलित अग्नि की शिखा के समान कीर्ति वाला सूर्य से भी प्रखर किरण वाला (उद्दामतेजः प्रसरप्रसूता शिखेव कीर्त्तिर्द्युमणि विजित्य)[3] कहा गया है। इसलिये मिहिर-भोज की प्रभास नामक उपाधि भी उपयुक्त ही थी। सूर्य का जो तेज पृथिवी पर प्रभास क्षेत्र में आकर गिरा वही प्रभास कहलाया।[4] अतः भोज सभी प्राणियों के कल्याण के लिये ही सूर्य रूप में (प्रभास बन कर) अवतरित हुआ था—

तत्र चार्कमयं रूपं कृत्वा देवो दिवाकरः।
उत्पन्नः सर्वभूतानां हिताय धरणीतले ॥[5]

वह सूर्य तेज से भासित (यस्मादर्कतेजोभिभासितं) होने के कारण ही प्रभास कहलाया (तस्मात्प्रभासनामेति····प्रथितं)[6]। इस प्रकार भोज के विविध-नाम उसकी आर्य कीर्ति के साक्षी हैं। वह धार्मिक (धर्म्य)[7] और बलवान (बलवान्भोजराजो)[8] राजा था।

---

१. स्मिथ, अर्ली हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, पृ० ३९३
२. ग्वालियर प्रशस्ति, श्लोक १६ :

उपरोधैकसंरुद्धविन्ध्यवृद्धेरगस्त्यतः।
आक्रम्य भूभृतां भोक्ता यः प्रभुर्भोज इत्यभात्।

३. वही, श्लोक २४ (१)
४. स्कन्दपुराण, ७/१/१३/१-६
५. वही, ७/१/१३/८
६. वही, ७/१/१३/२१
७. वही, ७/२६/२० (२)
८. वही, ७/२/६/२६ (२)

प्रजापति भोज

मिहिर भोज का पिता रामभद्र न तो दुर्बल ही था और न दुश्चरित्र तथा व्यसनी ही था। उसे धर्म-रक्षक (त्राता धर्मस्य) और क्रूर पापचारियों का नाश करने वाला कहा गया है, उसकी सेना में श्रेष्ठ अश्व (प्रवर हरिबल) थे; उसने बिना किसी की सहायता के अपने प्रताप से दिग्जय की थी (अनन्य-साधनाधीन प्रतापाक्रान्तदिङ्मुखः) और उपाय-नीति में दक्ष था (उपायैस्सम्पदां स्वामी यः)। वह कुशल और धार्मिक सम्राट (विशुद्धसत्वः) एक ऐसा पुत्र चाहता था जिसे वह 'प्रजापति' के पद पर नियुक्त करना चाहता था (प्रजापतित्वं विनियोक्तुकामः सुतं)। उसे मिहिर भगवान (सूर्य) के प्रसाद से ऐसा ही पुत्र प्राप्त हो गया जो आगे चल कर मिहिर भोज कहलाया।[1]

रामभद्र का राज्यकाल अल्प था। वह रण दक्ष और धर्म रक्षक था। उसे तुरुष्कों और म्लेच्छों (जिनको भोज की ग्वालियर प्रशस्ति में क्रूर-पापी कहा गया है) के साथ युद्ध करना पड़ा। सम्भवतः इस युद्ध मे ही उसे वीर गति मिली (संगतं कीर्तिदारैस्त्राता धर्मस्य)। अतः जब भोज अपने पिता के बाद सिंहासन पर आया, उसके राज्य की स्थिति शोचनीय अवस्था में थी। परन्तु भोज ने 'प्रजापति' के कर्तव्य को निभाकर इस शब्द को सार्थक बना दिया। जो सम्पूर्ण प्रजा के कल्याण की कामना करता है, वही प्रजापति है (प्रजासु हितकाम्यया प्रजापतिः[2])। भोज ऐसा ही प्रजापति था, जिसे जनेश्वर भी कहा गया है। पीड़ित पृथिवी ने भी ऐसे त्राता का स्मरण किया जो आदिवराह के रूप में गंगा-यमुना की अन्तर्वेदी (देखिये उदयगिरि में वराह मूर्ति के पास गंगा-यमुना) को बचाने के लिये अवतरित हुआ। प्रतिहार सभा का महान् विद्वान राजशेखर भी महावराह[3]-आदिवराह के रूप से इस महान् शासक का स्मरण करता है।

जैसा कि ऊपर सिद्ध किया गया है कि नागभट द्वितीय और रामभद्र के समय में ही कान्यकुब्ज का उतार-चढ़ाव हो रहा था, जिसके लिये प्रतिहार शासकों को पालों और राष्ट्रकूटों के साथ संघर्ष करना पड़ता था। प्रतिहारों

१—ग्वालियर प्रशस्ति, श्लोक १५

२—काव्यमीमांसा, अ० १, पृ० १/५

३—वही, अ० १२, पृ० ६६/१६-२०; अ० १५, पृ० ८१५३-१४/

की एक विशेष जिम्मेदारी अरब आक्रमण कारियों से मध्यदेश को बचाना भी था। प्रतिहारों की दूसरी शाखा भी अपनी शक्ति बढ़ा रही थी। इन परिस्थितियों में कान्यकुब्ज साम्राज्य की स्थापना करना सरल कार्य न था। परन्तु ८३७ ई० के आस-पास जब से भोज गद्दी पर बैठा उसका यही प्रयत्न रहा। उसने प्रज्ञा और पराक्रम की सहायता से अपने लक्ष्य की प्राप्ति की। उसके अभिलेख इस बात के साक्षी हैं (जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है) कि भोज पिहोआ (कर्नाल प्रान्त, हरियाना) से कालञ्जर तक प्रदेश का स्वामी था। विजयों द्वारा उसने इसे बढ़ाया और संगठित किया। ग्वालियर प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि उसने बड़े-बड़े शत्रुवंशों को अपनी क्रोधाग्नि से जला दिया (यस्य वैरिवृहद्वंशान्दहतः कोपवह्निना)[१]। न तो इन वंशों का नाम ही दिया गया है और न विजित देशों का ही उल्लेख किया गया है।

परन्तु इस वंश के इतिहास से ही ज्ञात होता है कि इसके पूर्व में पाल और दक्षिण में राष्ट्रकूट ही मुख्यतः इस वंश के प्रबल शत्रु थे जिनके विरुद्ध भोज के पूर्वजों को अपने प्रभुत्व के लिये संघर्ष करना पड़ा।

मिहिर भोज और पाल वंश

कलचुरि नरेश कर्ण के बनारस ताम्रपत्र लेख (क० सं० ७९३= १०४२ ई०) से ज्ञात होता है कि कलचुरि वंश के कोक्कल ने भोज को अभय दान-दिया था (भोजे राजनि⋯अभयदः)।[२]। डॉ० मीराशी के अनुसार यह भोज प्रथम ही था।[३] युवराजदेव द्वितीय के बिल्हरी शिलालेख से ज्ञात होता है कि कोकल्लदेव ने सम्पूर्ण पृथिवी को जीतकर दो कीर्ति स्तम्भों की स्थापना की थी—एक तो दक्षिण में कृष्णराज (द्वितीय, राष्ट्रकूट) और दूसरा उत्तर में भोजदेव को (कौवेर्याञ्च श्रीनिधिर्भोजदेवः)[४]। इस प्रकार डॉ० मीराशी के अनुसार जिस भोज को कोकल्ल प्रथम ने सहायता दी भोज प्रथम ही था न कि भोज द्वितीय—

१—ग्वालियर प्रशस्ति, श्लोक २१

२—कार्पस इं० इं०, जिल्द ४, अभिलेख ४८, पृ० २४१, पंक्ति ८-९

३—वही, पृ० २३८

४—वही, अभिलेख ४५, पृ० २१०, पंक्ति ८

"The Bhoja whom he rendered help must consequently be indentified with Bhoja."[1]

डॉ० मीराशी आगे कहते हैं कि अपने राज्य काल के प्रारम्भ में जब उसे देवपाल के विरुद्ध संघर्ष करना पड़ा था और जब देवपाल के आक्रमणों से रामभद्र के राज्य में कई प्रान्त निकल गये थे, उसी समय भोज प्रथम को कलचुरि नरेश ने सहायता पहुंचायी थी। मुंगेर ताम्रपत्र लेखों से ज्ञात होता है कि देवपाल ने अपने हाथियों की सहायता से विन्ध्य तक और घुड़सवारों की सहायता से काम्बोज देश को रौंद डाला। बादल स्तंभ लेख से ज्ञात होता है कि देवपाल ने गुर्जरों के स्वामी का दर्प चूर-चूर कर दिया (खर्वीकृतद्रविडगुर्जरनाथदर्पम्)।[2] परन्तु आगे चलकर देवपाल के राज्यकाल के अन्तिम समय में भोज ने अपनी शक्ति सुधार ली।[3] इस प्रकार स्पष्ट है कि कोकल्ल प्रथम ने प्रथम भोज की सहायता पहुंचाकर उसके राज्य की नीव पक्की की।[4]

सोढदेव के कहला ताम्रपत्र लेख (वि० सं० ११६५=१०७७ ई०) से ज्ञात होता है कि कलचुरि शासक शंकरगण प्रथम के पुत्र गुणाम्भोधिदेव (या गुणसागर प्रथम) ने भोज देव से कुछ भूमि प्राप्त की थी (भोजदेवाप्त भूमिः) और उसने अपने बल से गौड लक्ष्मी का अपहरण किया था।[5] इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि "प्रथम गुणसागर ने गौड राजा को पराजित करने में गुर्जर प्रतिहार नरेश प्रथम भोज को सहायता पहुंचायी थी और इस कारण से भोज ने उसे कुछ प्रदेश दिये थे।"[6]

इन उल्लेखों मे स्पष्ट होता है कि भोज को अपने शासन काल के प्रारम्भिक दिनों में पाल सम्राट देवपाल के विरुद्ध विजय-अभियान में सफलता न मिली। सम्भवतः भोज पराजित हुआ था, जैसा बादल स्तम्भ लेख में बताया गया है कि गुर्जर-नाथ का दर्प चूर-चूर हो गया। ऊपर, बनारस

१—कार्पस इं० इं०, जि० ४, भूमिका, पृ० ७४

२—एपीग्रै० इंडिका, जिल्द २, पृ० १६३

३—कार्पस इं० इं०, जिल्द ४, पृ० ७४, ७५

४—मीराशी, कलचुरि नरेश और उनका काल, पृ० १५

५—कार्पस इं० इ०, जिल्द ४, अभिलेख ४८, पृ० २३८, २४१

६—कलचुरि नरेश और उनका काल, पृ० ३४

ताम्रपत्र लेखों में बताया गया है कि कोक्कल्ल प्रथम ने भोज को भय से बचाया था (अभयदः)। परन्तु आगे चलकर देवपाल की मृत्यु के बाद भोज ने कलचुरि सामन्त-नरेश की सहायता से गौड लक्ष्मी (पालों से प्रभुता) का अपहरण कर लिया। भोज के ग्वालियर लेख में भी बताया गया है कि भोज ने शत्रु-सेना रूपी समुद्र का मन्थन कर धर्मपाल के पुत्र (देवपाल) के यश रूपी लक्ष्मी पर अधिकार कर अपने प्रताप की प्रतिष्ठा की।[1] इस लेख से भी स्पष्ट ज्ञात होता है कि भोज ने देवपाल की यश-श्री पर अपना अधिकार जमाया। भोज को इस विषय में कलचुरि-सामन्त से सहायता प्राप्त हुई थी।

चाटसू अभिलेख (जयपुर प्रान्त) से भी ज्ञात होता है कि भोज के सामन्तों गुहिल और हर्षराज, ने भी गौड (पाल) सम्राट की पराजय में प्रतिहार शासक की सहायता की थी।

भोज के सामन्त (कलचुरि, गुहिल और चाहमान)

इन उल्लेखों से स्पष्ट ज्ञात होता है कि कलचुरि और गुहिल नरेश भी भोज के अधीनस्थ सामन्त थे। इन सामन्तों ने भोज को उत्तरी भारत का सार्वभौम सम्राट बनने में बहुमूल्य सहायता दी। जिन देशों और राजाओं ने—भोज, मत्स्य, मद्र, कुरु, यदु, यवन, अवन्ति—ने धर्मपाल और देवपाल के प्रभुत्व को माना था, वे अब भोज के प्रताप से प्रभावित होकर उसके सामन्त बन गये थे। महेन्द्रपाल द्वितीय के परतापगढ़ अभिलेख से ज्ञात होता है कि चाहमान नरेश भी भोज के सामन्त थे।[2]

भोज और राष्ट्रकूट

इन सामन्तों की स्थिति से ज्ञात होता है कि भोज की शक्ति पश्चिम और दक्षिण में राष्ट्रकूटों की शक्ति से टकराई और वंशानुगत वैर ने इन दोनों वंशों को संघर्ष में घसीट लिया। परन्तु जब मिहिर भोज अपनी शक्ति

१—ग्वालियर प्रशस्ति, श्लोक १८ :

यस्याभूत्कुलभूमिभृत्प्रमथनव्यस्तान्य सैन्याम्बुधे—
र्व्यूढां च स्फुटितारिलाजनिवहान्हुत्वा प्रतापानले ।
गुप्ता वृद्धगुणैरनन्यगतिभिः शान्तैस्सुधौद्भासिभि—
र्धर्मापत्ययशः प्रभूतिरपरा यश लक्ष्मीः पुनर्भून्नर्या ।।

२—हि० क०, पृ० २४१

को काठियावाड़ तक फैला रखा था, अमोघवर्ष ने उसके विरुद्ध उंगली तक न उठाई। यदि उसमें अपने पिता की योग्यता होती, तो वह गुर्जर प्रतिहारों के प्रसार को रोकता।[1] जब गोविन्द तृतीय की मृत्यु के बाद अमोघवर्ष सिंहासन पर बैठा, वह अल्पवयस्क था, और बाल-नृप को जानकर चारों ओर विद्रोह होने लगे तथा कुछ समय के लिये अमोघवर्ष को सिंहासन छोड़कर भाग जाना पड़ा। ऐसी दुरवस्था से भोज के साम्राज्यवादी प्रसार में राष्ट्रकूटों की ओर से कोई विशेष बाधा न पहुंची। परन्तु बेगुम्रा ताम्रपत्र लेख से ज्ञात होता है राष्ट्रकूटों के गुजरात में सामन्त ध्रुव द्वितीय ने गुर्जरों की शक्ति-सम्पन्न सेना को पराजित किया।[2] यह भोज की बढ़ती हुई शक्ति पर एक प्रबल आघात था। डॉ० अल्टेकर का मत है कि भोज के आक्रमण के भय से गुजरात के राष्ट्रकूट शासक ध्रुव द्वितीय और अमोघवर्ष में मैत्री हो गयी और संभवतः अमोघवर्ष ने ध्रुव द्वितीय को भोज के विरुद्ध सहायता भी दी।[3]

अमोघवर्ष के पुत्र एवं उत्तराधिकारी कृष्ण द्वितीय के राज्य काल में भी यह संघर्ष चलता रहा। यह युद्ध क्षेत्र मालवा था। भावनगर म्यूज़ियम के प्रतिहार लेख से ज्ञात होता है कि भोज ने कृष्णराज (कृष्ण द्वितीय) पर आक्रमण किया था। गुजरात के राष्ट्रकूट कृष्ण के बेगुम्रा लेख (८८८ ई०) से ज्ञात होता है कि सामन्त नृप ने शत्रु को उज्जयिनी में पराजित किया था। इन्द्र तृतीय के बेगुम्रा लेख से भी इस युद्ध की भीषणता का पता चलता है। डॉ० अल्टेकर का विचार है कि इन युद्धों से किसी भी दल को कुछ लाभ न हुआ। अलमसूदी से ज्ञात होता है कि गुर्जर प्रतिहार शासक अपनी सीमा पर राष्ट्रकूटों को उत्तर में बढ़ने से रोकने के लिये सुदृढ़ सेना रखते थे। अतः सीमा पर युद्ध होना आवश्यक था और इन युद्धों में विजय कभी एक दल को होती थी तो कभी दूसरे दल को विजय मिलती थी। कृष्ण (द्वितीय) इतना सशक्त न था कि वह ध्रुव प्रथम या गोविन्द तृतीय की भाँति वीरता से आक्रमण करता और भोज की भी आयु इतनी हो चुकी थी कि वह दक्षिण में कोई

१—अल्टेकर, राष्ट्रकूटाज़, पृ० ७७

२—वही, पृ० ८५, नोट ४१,

गुर्जरबलमतिबलवत् समुद्यतम् बृंहितं च कुल्येन।
एकाकिनैव विहितं पराङ्मुख लीलया येन॥

३—वही, पृ० ८५

बड़ा आक्रमण करता।[1] परन्तु ग्वालियर लेख में स्पष्ट बताया गया है कि विन्ध्य को पार कर भोज ने राजाओं को अपना करद सामन्त बनाया था। स्कन्दपुराण से ज्ञात होता है कि उसके पास विशाल और सुदृढ़ सेना थी तथा सौराष्ट्र में उसका अधिकार था।

उत्तरापथ

डॉ० त्रिपाठी कहते है कि अपने दीर्घ राज्य काल में भोज ने उत्तर पश्चिम की ओर भी साम्राज्य वादिनी दृष्टि डाली और निश्चित रूप से उसने सतलज नदी के पूर्वी भागों को अपने राज्य में मिला लिया जैसा कि पिहोआ (प्राचीन पृथूदक, कर्नाल प्रान्त, जो कुरुक्षेत्र के निकट स्थित हैं) अभिलेख (८८२ ई०) से सिद्ध होता है। इस अभिलेख से ज्ञात होता है कि पृथूदक (पिहोआ, जो एक प्रसिद्ध तीर्थस्थान भी था) के मेले में घोड़ों का क्रय-विक्रय होता था। अश्व-वाणिज्य का यह अभिलेख भोज देव के वर्धमान राज्य का उल्लेख करता है।

कल्हण की राजतरंगिणी से भी भोज के 'अधिराजत्व' (सार्वभौम सम्राट-पद) और उत्तरी-पश्चिमी प्रान्तों (पंजाब में स्थित, मद्र देश जो कभी धर्मपाल के आधीन था, इस समय भोज के आधीन हो गया था) पर अधिकार सिद्ध होता है—

हृतं भोजाधिराजेन स साम्राज्यमदापयत्।
प्रतीहारतया भृत्यीभूते थक्कियकान्वये ॥[2]

अर्थात् पंजाब का जो भाग अधिराज (सम्राट) भोज के अधिकार में चला गया था, उसे काश्मीर के शासक (शंकरवर्मन) ने थक्किय वंश के राजा को पुनः वापस करा दिया। इससे इतना अवश्य सिद्ध होता है कि भोज को अधिराज मान लिया गया था। राजतरंगिणी से ज्ञात होता है कि काश्मीर शासक शंकरवर्मन् गुर्जर राजा पर विजय चाहता था (गूर्जरजयव्यग्रः)[3] और उसने युद्ध में गुर्जर शासक अलखान को पराजित किया। अलखान ने काश्मीर शासक को टक्क देश देकर सन्धि कर ली।[4] इसके बाद के ही श्लोक

१—अल्टेकर, राष्ट्रकूटाज पृ० ६७
२—राजतरंगिणी, ५/१५१
३—वही, ५/१४४
४—वही, ५/१४६-१५०

(५/१५१) में भोज का उल्लेख है। अतः यही सिद्ध होता है, जैसा के० एम० मुंशी मानते हैं, कि शंकरवर्मन ने पंजाब के उस भाग को जीत लिया था। परन्तु यह विजय भोज की मृत्यु के बाद ही हुई। जब तक भोज जीवित रहा, वह 'अधिराज' ही बना रहा।

भोज और तुरुष्क

भोज के सिंहासन पर आने के एक वर्ष के अन्दर ही सिन्ध के गर्वनर ईमान इब्न मूसा ने अरब शक्ति को बढ़ाना चाहा। परन्तु उसे सफलता न मिली। अरबों को कच्छ से बाहर खदेड़ दिया गया। यह मिहिर भोज की शक्ति और नीति का ही परिणाम था, जैसा कि तत्कालीन अरब यात्री सुलेमान के विचारों से सिद्ध होता है। वह कहता है कि जुज्र (या गुर्जर) के राजा (जिसकी पहचान कन्नौज के महान् शासक से की गयी है) के पास विशाल सेना थी। जितनी अच्छी अश्वारोही सेना भोज के पास थी, उतनी और वैसी सेना अन्य किसी भारतीय शासक के पास न थी। अरबों के प्रति उसका व्यवहार मित्रतापूर्ण न था। वह मुसलमानों का घोर शत्रु था—

"The king of Juzra (jurz) maintains numerous forces and no other Indian prince has so fine a cavalry. He is unfriendly to the Arabs....Among the princes of India there is no greater foe of the Muhammadan faith than he."[२]

भोज के ग्वालियर अभिलेख में भी यही बात कही गयी है—

कुमारैव विद्यानां वृन्देनाद्भुतकर्मणा।
यः शशासासुरान्घोरान्स्त्रैणेनास्त्रैकवृत्तिना ॥[३]

"Like Kumara (Karttikeya) with his host of Matrikas who performed wonderful deeds, he subdued the terrible Asuras with the help of a band of women that lived upon arms."

अर्थात कुमार कार्त्तिकेय की भांति (सप्त) मातृकाओं की सहायता से उसने बहुत अद्भुत कार्य किये। उसने अस्त्रधारिणी स्त्रियों की सहायता से

१—ग्लोरी दैट वाज़ गुर्जर देश, पृ० ११२

२—Elliot & Dowson, History of India, Vol I, p. 4

३—ग्वालियर प्रशस्ति, श्लोक २२

घोर (उग्र) असुरों का दमन किया। ये असुर वे ही थे जिन्हें इसी अभिलेख में म्लेच्छ (श्लोक ४), तुरुष्क (श्लोक ११) और पापी (पापाचारान्, श्लोक १२) कहा गया है। इस प्रकार म्लेच्छ-तुरुष्क ही घोर (क्रूर सत्व) थे जिनका दमन भोज ने किया था।

स्कन्दपुराण में दैत्यों (=घोर असुरों) को 'मुक्तकच्छशिखा' (काँच वाली धोती और चोटी से रहित अर्थात् तुरुष्क=तुर्क) वाला कहा गया है। महेन्द्र (महेन्द्रपाल ?) ने इनका मध्यदेश में संहार किया था (मुक्तकच्छ-शिखानां च चक्रे स कदनक्रियः)।[१] इस प्रकार ग्वालियर लेख के असुर तत्कालीन मुस्लिम आक्रमणकारी ही थे।

महेन्द्रपाल के ऊना ताम्रपत्र लेख से ज्ञात होता है कि कच्छ और काठिया वाड़ गुर्जर-प्रतिहार साम्राज्य में सम्मिलित थे।[२] स्कन्दपुराण से भी सिद्ध होता है कि सौराष्ट्र भोज के राज्य में सम्मिलित था। इसी देश में रैवतक पर्वत और वस्त्रापथ क्षेत्र स्थित थे।[३]

स्कन्दपुराण और भोजवृत्तान्त (राज्यत्याग)

डॉ० रायचौधरी वस्त्रापथ माहात्म्य में उल्लिखित भोज के 'ऐतिहासिक उल्लेख' का वर्णन करते हुए कहते हैं कि भोज ने संभवतः कुछ ही समय के लिए राज्य त्याग दिया था, जैसा कि उनके विचार से ज्ञात होता है। भोज ने अपने गुरु (पुरोहित) सारस्वत से कहा कि राज्य, पुत्रों और सेना को छोड़कर तथा पुत्र को सिंहासन पर बिठलाकर मैं तीर्थयात्रा पर चला जाऊँ।[४] परन्तु भोज के गुरु ने उनको रोका (निवारयामास मुनिर्नरेन्द्रम्) और कहा कि 'घर में भी देवता, जल, तिल और कुश हैं। हे राजन्! अनेक देशों को देखने की इच्छा से अपने मन को रोको।'[५] बहुत बहस के बाद भोज ने अपने संकल्प को छोड़ दिया। यहां भोज को यह बताया गया कि राजा के लिये राज्य-रक्षा, प्रजा-पालन तथा

१—स्कन्दपुराण, १. १. १४. १४

२—हि० गु० प्र०, पृ० ५८

३—स्कन्दपुराण, ७.२.१०.११

४—वही, ७.२.१०.१५:

त्यक्त्वा राज्यं प्रियान्पुत्रान्पत्यश्वरथकुंजरान्।
पुत्रं राज्ये प्रतिष्ठाप्य गन्तव्यं निश्चितं मया॥

५—वही, ७.२.१०.१८-१६

शत्रु-संहार करना ही परम धर्म था। इस लिये भोज को राज्य छोड़ना उचित नहीं था और न उसने राज्य छोड़ा ही। सारस्वत के इस आदेश और उपदेश के लिये भोज ने उनकी पूजा की। विधान के अनुसार सम्पूर्ण परिवार के साथ उसने वस्त्रापथ की यात्रा भी की। अपने कर्तव्य का पालन करते हुए वह 'कृतार्थ' हो गया तथा अन्त में (राजधर्म का पालन करते हुए) उसने परं पद प्राप्त किया—

> ततो तथोक्तविधिना स भोजो नृपसत्तमः।
> वस्त्रापथक्षेत्रयात्रां परिवारजनैः सह ॥
> कृत्वा कृतार्थतां प्राप्तो जगामन्ते परं पदम् ॥[१]

मूल्यांकन

प्रारम्भ में ही भोज के व्यक्तित्व और चरित्र का मूल्यांकन किया गया है। उसकी कृतियां ही उसके कृतित्व की साक्षी हैं। उसका अति महत्वपूर्ण कार्य आर्यावर्त (उत्तरी भारत) में बिहार प्रदेश से लेकर प्रभास (पश्चिमी समुद्रतट) तथा पूर्वी पंजाब तक सार्वभौम शक्ति की स्थापना करना इसे मुस्लिम आक्रमणों से बचाना था। मुस्लिम लेखकों ने भी भोज की प्रतिभा, प्रभाव और प्रचन्डता का उल्लेख किया है। उसके ग्वालियर लेख में ही उसके कृतित्व का मूल्यांकन किया गया है। असुरों का दमन करने के लिए वह कुमार (कार्तिकेय) ही था। वह शक्ति (देवी) का परम भक्त था। इन शस्त्रधारिणी देवियों ने ही उसकी सहायता की थी।

वह प्रजापति था। राजशेखर ने बताया है कि प्रजा का हित करने वाला ही प्रजापति होता है (प्रजासु हितकाम्यया प्रजापतिः)। उसका राजत्व मद (अहंकार) के व्यसन से दूषित नहीं था (परित्यक्तो लक्ष्म्या न मदकलंकेन कलितः)। गुणवान् लोगों पर प्रेम तथा उदारता का व्यवहार करता था (बभूव प्रेमार्द्रो गुणिषु)[२]। रक्षा करने से प्रसन्न तपस्वियों (प्रीतैः पालनया तपोधनकुलैः), स्नेह से वशीभूत गुरुओं (स्नेहाद्गुरुणां गणैः), नीतिनिपुणता से वशीभूत शत्रुओं (नीतिनिपुणैर्वृन्दैररीणां) और सम्पूर्ण विश्व ही अपनी जीविका-पूर्ति (विश्वेनापि स्वजीवैषिणा) से ही वह दीर्घायु था।[३] श्रुति (वेद)

१—स्कन्द पु०, ७.२.१६.३४

२—ग्वालियर प्रशस्ति, श्लोक १७

३—वही, श्लोक १८

के अनुशासन से (श्रुतेरनुशासनाद्) यह सत्य है कि जब तक यह संसार है मनुष्य अपने किये कर्म का फल भोगता है, न कि दूसरा चाहे वह सैकड़ों राजाओं का प्रभु ही क्यों न हो। सद्बुद्धि वाले सज्जन लोगों की पुण्यकृतियों (सतां सुकृतैः) से इस राजा (भोज) की ऐश्वर्य-वृद्धि ही हुई। उसने कलि को पराजित किया था (अधरितकलेः)। इसीलिये वह कीर्त्ति का स्वामी था (कीर्त्तेभर्त्तुः)।[१] उसी पुण्यात्मा सम्राट ने अपनी रानियों के यश और पुण्य की वृद्धि के लिये अन्तःपुर में ही विष्णु-मन्दिर का निर्माण करवाया था।[२] अन्त में ग्वालियर लेख का लेखक, कवि बालादित्य कहता है कि जब तक आकाश, गंगा, तप प्रभाव और सत्य रहता है, तब तक संसार को भोज की आर्य-कीर्ति पवित्र करती रही (पुनातु जगतीमियमार्य कीर्तिः)[३]। राजा भोज देव की सभा विद्वान लोगों से भी सुशोभित थी[४] और उन विद्वानों में बहुश्रुत राजशेखर भी विद्यमान था।

इस प्रकार उसके अभिलेख से सिद्ध होता है कि भोज कितना महान् शासक था। इसीलिये राजतंरगिणी में उसे सत्य ही अधिराज कहा गया है। जो सभी राजाओं में अधिक तेजस्वी हो वही अधिराज कहलाता है (आधि-क्येन राजते)। इससे भोज का अन्य राजाओं पर अधिपत्य सिद्ध होता है।[५]

स्कन्दपुराण में भोज का वर्णन सिद्ध करता है कि वह बलवान, रणदक्ष, अश्वारोही और सशक्त सम्राट था जो अपनी सेना का स्वयं नेतृत्व करता था, यद्यपि सेनापति और बलाध्यक्ष थे। जिस सेना को सौराष्ट्र भेजा गया था, उसमें सेनाध्यक्ष के नेतृत्व में १० हजार घुड़सवार (अश्वानां दशसाहस्रं) और बहुत से बागुर तथा पैदल थे।[६] इस सेना के साथ ही भोज भी गया था, वह हाथी पर सवार न होकर घोड़े पर सवार था (अश्वाधिरूढो बलवान्भोज-राजो)।[७] इस प्रकार स्पष्ट है कि भोजराज की सैनिक शक्ति में अश्व-सेना

१—ग्वालियर प्रशस्ति, श्लोक २०
२—वही, श्लोक २५
३—वही, श्लोक, २६
४—वही, श्लोक, २७
५—देखिये, वेदिक इन्डेक्स, जिल्द १, पृ० १६-२०; सरकार, इंडियन एपिग्रे-फिकल ग्लोसरी, पृ० ७
६—स्कन्द पु०, ७/२/६/२६
७—वही, ७/२/६/२६ (२)

की विशिष्टता थी, जैसा कि मुस्लिम लेखकों ने बताया है। इस सैनिक शक्ति और नीतिनिपुणता का ही परिणाम था कि भोज ने अपने युग को कलियुग के दोषों को मिटाकर पुण्ययुग (सतयुग) में बदल दिया था। यह सत्य ही है; क्योंकि राजा ही अपने युग का निर्माता होता है (राजा कालस्य कारणं)। धार्मिक राजा भोज ने अपनी प्रजा पर शासन (राज) धर्म के अनुसार किया:—

कान्यकुब्जे महाक्षेत्रे राजा भोजेति विश्रुतः।
पुरा पुण्युगे धर्म्यः प्रजा धर्मेण शासति ॥[१]

कान्यकुब्ज महाक्षेत्र (अत्यन्त पवित्र भूखंड) था, जो गंगा के किनारे पुण्य जनपदों और ऋषियों तथा विद्वान विप्रों से सेवित प्रदेश था।[१] भोज ने अपनी विजय और व्यवस्था से इसे महादेश बना दिया—

कान्यकुब्जे महोदेशे राजा भोजेति विश्रुतः।[२]

इस देश के महोदय (उन्नति) में ही भोज की भी विश्रुति (कीर्ति) हो गयी।

भोज के सिक्के

गुप्त साम्राज्य के पतन के बाद मौखरियों और पुष्यभूति वंश के शासकों ने भी गुप्त परम्पराओं का अनुसरण करते हुए सिक्कों को चलाया। परन्तु हर्ष के बाद ज्यों-ज्यों आगे के इतिहास को देखते हैं, सिक्कों की प्राप्ति कम सख्या में होती है। अरब आक्रमणों (ईसा की सातवीं शताब्दी) से लेकर पृथ्वीराज-पराभव तक यहां की अतुल सम्पत्ति लुटती रही और वह देश के बाहर जाती रही। इसका उत्तरी भारत के आर्थिक जीवन पर बहुत ही बुरा प्रभाव पड़ा।

१—स्कन्दपुराण, ७/२/६/२०

२—वही, ७/२/१/७-८

३—वही, ७/२/६/१४१ (२)

डॉ० विमलचन्द्र पांडे ने लिखा है "................राजा भोजेति विष्णुतः।" एक अध्यापक ने भोज पढ़ाते समय इसकी व्याख्या भी कर दी कि "भोज विष्णु के समान ही था, क्योंकि आदिवराह (विष्णु) उसकी उपाधि थी।" यह मूर्खता ही है। पाठ ,विश्रुतः (ख्यातः=प्रसिद्ध है) है न कि 'विष्णुतः'।

भोज के आदिवराह प्रकार' के चाँदी के सिक्के (चाँदी में कुछ अन्य धातु के मिलावट से बने हुए) प्राप्त होते हैं। इन सिक्कों के अग्र भाग में वराह को चक्र, गदा, पद्म और शंख धारण किये हुए पाते हैं। पृष्ठ भाग में तुलसी वृन्दावन और षटकोण चिन्ह् कंकित पाते हैं। यहीं श्रीमद आदिवराह का लेख भी लिखा है। उसके तांबे के भी सिक्के मिलते हैं।[१]

मिहिर भोज का साम्राज्य विस्तार

भोज राज्य के विस्तार पर विचार करते हुए डॉ० के० यम० मुंशी ने बताया है कि गुर्जर देश की भौगोलिक सीमाएँ इस साम्राज्य के चरमोन्नति के समय कुछ निश्चयता के साथ आंकी जा सकती हैं। ह्वेनसांग के समय से जोधपुर और जयपुर प्रान्तों के कुछ भाग इन सम्राटों के मूल-आवास क्षेत्र गूर्जरत्रा में सम्मिलित थे। मालव, मेदपाट, प्रतापगढ़, डूंग पुर, बंसवाड़ा, धोलपुर और शाकम्भरी, जहां गुहिलौत, परमार, चाप,, चाहमान, और चालुक्य शासन करते थे, भी गुर्जरत्रा या गुर्जर देश के साथ भाषा और सामाजिक सम्बन्धों के आधार पर परस्पर सम्बन्धित थे। इन शासकों का भी प्रतिहार शासकों से घनिष्ट सम्बन्ध था। ये राजा प्रतिहार सम्राट के सामन्त भी थे।

दो अन्य प्रदेश, जेजाभूक्ति (आधुनिक बुंदेलखंड) और कान्यकुब्ज भुक्ति (जिसमें कालिंजर विषय और वाराणसी विषय सम्मिलित थे] भी प्रतिहार साम्राज्य के अंग थे।[२] भोज के राज्य में सौराष्ट्र भी सम्मिलित था। इस प्रकार कान्यकुब्ज एक महादेश (विशाल साम्राज्य) बन गया जिसमें ३६ लाख गाँव सम्मिलित थे। यह उत्तरी भारत का प्रमुख राज्य बन गया। अस्तु डा० त्रिपाठी के अनुसार भोज का साम्राज्य बहुत बढ़ा हुआ था:—

"Thus under Bhoja the kingdom of Kanauj grew to enormous dimensions, and it may be roughly defined as limited by the Satlej in the north-west; the foot of the Himalayas in the north; the western boundaries of the Pala dominions in the east; Bundelkhand and the Vatsa territories in the south and south-

१—ग्लोरी देट वाज गुर्जर देश, भाग १, पृ० २१५-२१६

२—वही, पृ० ११७

east possibiy the lower course of the Narmada and Saurashtra on the south west, including the major portion of Rajputana on the west."[१]

इससे स्पष्ट है कि संपूर्ण मध्यदेश भोज के साम्राज्य में सम्मिलित था। मुस्लिम लेखक अबूज़ैद भी बताता है कि गुर्जर साम्राज्य का अंग कन्नौज एक विशाल देश था—

Kanauj, a large country forming the empire of Jurz."[२]

महेन्द्रपाल (प्रथम)

मिहिर-भोज के कई रानियां (देवियां) थीं।[३] स्कन्द पुराण से ज्ञात होता है कि सौराष्ट्र से प्राप्त (मृगानना) स्त्री के साथ भोज ने विवाह कर लिया था। और वह ही प्रसिद्ध देवी (रानी)[४], जिसे भोजराज ने अपनी पट्टमहिषी बना लिया (कृता सा पट्टमहिषी भोजराजेन धीमता)।[५] इसी पुराण से ही यह भी ज्ञात होता है कि उसके कई पुत्र (प्रियान् पुत्रान्) थे जिनमें वह किसी विशेष पुत्र को राज्य सौंपना चाहता था—

त्यक्त्वा राज्यं प्रियान्पुत्रान्पत्त्यश्वरथकुंजरान्।[६]
पुत्रं राज्ये प्रकितिष्ठाप्य गन्तव्यं निश्चितं मया॥

परन्तु यहां किसी भी पुत्र का नामोल्लेख नहीं किया गया है। जिस पुत्र को वह राज्य सौंपना चाहता था, निश्चयतः वह महेन्द्रपाल ही रहा होगा; क्योंकि उसकी शिक्षा के लिये राजशेखर को गुरु रूप में नियुक्त करना सिद्ध करता है कि महेन्द्रपाल को ही राज्यधुर ढोने के लिये सुयोग्य समझ कर राज्य

१—हि० क०, पृ० २४६

२—ईलियट ऐण्ड डाउसन, हिस्ट्री आफ इण्डिया, भाग १, पृ० १०, ३५८

३—ग्वालियर प्रशस्ति, श्लोक २५:

राज्ञा तेन स्वदेवीनां यशः पुण्याभिवृद्धये।

४—स्कन्द पु०, ७.२.७.३२

परिणीता तु सा नेनु भोजराजेन सुन्दरी।
मृगीमुखी तु विख्याता देवी सा भुवनेश्वरी॥

५—वही, ७.२.७.३३

६—वही, ७.२.१०.१५

देना चाहता था। जिस समय भोज ने राज्य-त्याग का विचार किया था, उस समय महेन्द्रपाल अवश्य ही यौवराज्य के योग्य वीर (यौवराज्याभिषेकार्हो वीरो) था।[१]

भोज के दौलतपुर ताम्रपत्र लेख में नागभट्ट नामक युवराज दूत (श्रीमान् नागभट्ट नामा युवराजोत्तरदूतक:)[२] का उल्लेख मिलता है। परन्तु आगे चलकर उस युवराज का नाम नहीं सुनाई पड़ता है। इसलिये डॉ० पुरी का विचार है कि वह या तो भोज के जीवन काल में ही मर गया या भोज की मृत्यु के बाद एक-दो साल तक उसने शासन किया।[३] महेन्द्रपाल ही भोज की मृत्यु के बाद, लगभग ८९० ई० के आस पास, सिंहासन पर बैठा।

उसकी मां का नाम चन्द्रभट्टारिका देवी था। उसके कई नाम थे—महेन्द्रपाल, महीन्द्रपाल, महेन्द्रायुध, महिषपाल आदि। उसके गुरु राजशेखर ने उसको निर्भयराज, या निर्भयनरेन्द्र का नाम दिया है। उसके राज्यकाल के कई अभिलेख हैं जिनके प्राप्ति-स्थान उसके राज्य की विशालता के प्रमाण हैं।[४]

अभिलेख

१. ऊन (काठियावाड़) ताम्रपत्र लेख (वलभी संवत् ५७४) में भूमिदान का उल्लेख है। इसका सम्बन्ध सूर्य के मन्दिर तरुणादित्य से है। इसे महा सामन्त बलवर्मन् ने दान दिया था।

२. दिघवा—दुबौली (सारन प्रान्त, बिहार प्रदेश) ताम्रपत्र लेख (विक्रम सं० ९५५)

४. सियदोनी (ललितपुर प्रान्त, उत्तर प्रदेश) अभिलेख जिसमें कई प्रतिहार शासकों का उल्लेख है। इसकी पंक्ति ४० में अमरावती (इन्द्रपुरी) रूपी महोदय का शासक मनुष्येन्द्र (महोदयामरावत्यां मनुष्येन्द्रेण धीमता) महेन्द्रपाल ही है।

१—बालभारत, पृ० १०, १/४१
२—एपीग्रेफिया इंडिका, जिल्द ५, पृ० २१०
३—हि० गु० प्र०, पृ० ६६
४—वही, पृ० ६८-६९

४. आहार (बुलन्दशहर प्रान्त, अनूपशहर से ७ मील दूर, उत्तर प्रदेश) शिला लेख।

५. बिहार शरीफ (पटना प्रान्त, बिहार प्रदेश) में महेन्द्रपाल के चौथे राज्यवर्ष का दान-परक लेख है।

६. बिहार शरीफ से ही उसके चौथे राज्य वर्ष का लेख बुद्ध मूर्ति पर खुदा हुआ प्राप्त हुआ, जो इस समय नालन्दा म्यूजियम में है।

७. रामगया (गया) और गुनरिया (गया प्रान्त) से, दोनों लेख, बिहार के गया प्रान्त में मिले हैं।

८. पहाड़पुर (राजशाही प्रान्त, पूर्वी पाकिस्तान) महेन्द्रपाल के पांचवे राज्यवर्ष का लेख है। इस लेख से महेन्द्रपाल के पूर्व में उत्तरी बगाल तक राज्य विस्तार का परिचय मिलता है।

९. पिहोआ प्रशस्ति

इन अभिलेखों के प्राप्ति-स्थानों से ज्ञात होता है कि महेन्द्रपाल का राज्य उत्तर पश्चिम में पूर्वी पंजाब से लेकर उत्तरी बंगाल तक और पश्चिम में सौराष्ट्र तक विस्तृत था। इस प्रकार उसका अधिकार प्रायः सम्पूर्ण आर्यावर्त पर स्थापित था। राजशेखर सत्य ही महेन्द्रपाल और उसके पुत्र को आर्यावर्त महाराजाधिराज कहते हैं (बालभारत, पृ० २)। इस प्रकार महेन्द्रपाल के शासन काल में प्रतिहार साम्राज्य अपनी उन्नति के शिखर पर पहुंचा।

प्रतिहार-पाल

महेन्द्रपाल ने अपनी विजय प्रज्ञा (नीतिनिपुणता) और पराक्रम से भोज की ही विस्तारवादी दृढ़ नीति का अनुसरण करते हुए की। मगध (बिहार प्रदेश) में महेन्द्रपाल के कई (छः) अभिलेख प्राप्त हुए हैं। इससे उस क्षेत्र में महेन्द्रपाल का अधिकार सिद्ध होता है। जैसा कि ऊपर बताया गया है कि राजशाही अभिलेख से महेन्द्रपाल का आधिपत्य उत्तरी बगाल तक सिद्ध होता है। इससे यही ज्ञात होता है कि प्रतिहार सम्राट ने पालों को इस क्षेत्र—बिहार और उत्तरी बंगाल—के अधिकार से वंचित कर दिया था।

पाल शासक नारायाण पाल के विष्णुपद (गया) के सातवें वर्ष के, और बिहार शिला लेख (वर्ष ९) तथा भागलपुर ताम्रपत्र लेख (वर्ष १७) जो मुद्गगिरि (मुंगेर) से लिखवाया गया था सिद्ध होता है कि उसके राज्यकाल के पूर्वार्द्ध में मगध पर उसका अधिकार था। परन्तु उसके राज्यकाल के

उत्तरार्द्ध में उसके अभिलेखों की प्राप्ति नहीं हुई, इससे यही सिद्ध होता है कि प्रतिहारों का मगध पर अधिकार हो गया था।

डॉ० त्रिपाठी के अनुसार इस क्षेत्र में भोज का कोई अभिलेख नहीं मिला है। इससे यही सिद्ध होता है कि इस क्षेत्र की विजय महेन्द्रपाल ने ही की थी। महेन्द्रपाल के भी लेख उसके प्रारम्भिक राज्य वर्षों के प्राप्त होने से ज्ञात होता है कि सिंहासन पर बैठने के बाद ही उसने अपना ध्यान पूर्व की ओर पाल राज्य पर दिया और विजय प्राप्त की।[1] परन्तु इस क्षेत्र की विजय स्वयं भोज ने ही की थी (जैसा ऊपर बताया गया है) और महेन्द्रपाल ने उसे सुरक्षित बनाये रखा। इसीलिये मगध में उसका दूसरे राज्यवर्ष का लेख मिला है।

पश्चिम भारत

ऊना (काठियावाड़) से प्राप्त दो लेखों से सिद्ध होता है कि महेन्द्रपाल का आधिपत्य सौराष्ट्र पर बना रहा। परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर महेन्द्रायुध (महेन्द्रपाल) के चालुक्य राजा बलवर्मन और उसके पुत्र अवनिवर्मन् द्वितीय सामन्त थे। बलवर्मन् ने इस क्षेत्र को हूणों से मुक्त किया था। अतः इस क्षेत्र में कुछ उपद्रव भी हुए।[2]

उत्तरापथ

परन्तु उत्तर-पश्चिम से काश्मीर के शासक शंकरवर्मन ने गुर्जर गर्वनर अलखान को पराजित कर विवश कर दिया कि वह टक्क प्रदेश को जिसे अधिराज भोज ने जीता था उसे वापस कर दे। फिर भी उत्तर पश्चिम में पूर्वी पंजाब के कर्नाल प्रान्त तक उसका अधिकार था जैसा कि पिहोआ प्रशस्ति से सिद्ध होता है।

उत्तर में हिमालय की तलहटी तक उसका अधिकार था जैसा कि दिघवा-दुबौली लेख से सिद्ध होता है जिसमें नैपाल की तराई में स्थित श्रावस्ती मण्डल में सम्मिलित ग्राम का दानोल्लेख है।

१— त्रिपाठी, हि० क०, पृ० २५०

२—पुरी, हि० गु० प्र०, पृ० ६८

३—त्रिपाठी, हि० क०, पृ० २५०

दक्षिण में सियदोनी (बुन्देल खंड) तक प्रदेश उसके राज्य में सम्मिलित था।

मूल्यांकन

सुसंस्कृत सम्राट भोज का सुपुत्र महेन्द्रपाल भी एक शिष्ट और सुशिक्षित सम्राट था जिसका गुरु राजशेखर था। राजशेखर का विचार है कि कुल को बढ़ाने वाली शुद्ध बुद्धि का विकास पवित्र संस्कारों से ही होता है—

संस्कारशौचेन परं पुनीते शुद्धा हि बुद्धिः कुलकामधेनुः ।[1]

महेन्द्रपाल ऐसे विचारों वाले गुरु का शिष्य था; इसलिये वह पराक्रम, सौजन्यता, सत्यता, और त्याग से युक्त गुणवान् राजा था—

आपन्नार्तिहरः पराक्रमधनः सौजन्यवारांनिधि—
स्त्यागी सत्यसुधा प्रवाह शशभृत कान्तः कवीनां मतः ॥
वर्ण्यं वा गुणरत्नरोहणगिरेः किं साक्षादसौ ।
देवो यस्य महेन्द्रपाल नृपतिः शिष्यो रघुरामणीः ॥[2]

वह रघुवंशी राजा था। राजशेखर ने सत्य ही कहा है कि नृपति का राजत्व उसके गुणों पर ही आधारित था—

राजते नृपतिगुणैः ।[3]

वह मध्यदेश का सम्राट था (मध्यदेश नरेन्द्र एष)[4] ।' उसकी तिथि ९०७-९०८ ई० है अतः उसका राज्य-काल, संभवतः, ९१० ई० के आस पास समाप्त हुआ।

महेन्द्रपाल प्रथम के उत्तराधिकारी और प्रतिहार पराभव

महेन्द्रपाल की मृत्यु के बाद ही प्रतिहार वंश में घुन लग गया जो इसे खोखला करता हुआ पतन की ओर ले गया। राजवंशों के क्षय-रोग (राजरोग) ने भी इसे दबा लिया। इस रोग का प्रमुख लक्षण वंश के राजपुत्रों में प्रेम

१—बालभारत, पृ० ३, १/९
२—वही, पृ० ३, १, ११
३—वही, पृ० ११, १, ४३
४—बाल रामायण, अंक ३, पृ० ७५

और भक्ति न होकर वैर और संघर्ष का होना था। इस दोष को दूर करने के लिये ही संभवतः राजशेखर ने अपने शिष्यों—महेन्द्रपाल, महीपाल तथा अन्य राजपुत्रों—को शिक्षा देने के लिये ही रामायण और महाभारत, की कथा पर आधारित नाटकों, बालरामायण और बालभारत को, लिखा तथा उनका अभिनय भी कराया। बाल भारत या प्रचण्डपाण्डव[1] का मूल उद्देश्य था कि पाँच पांडव भाई (परस्पर प्रेम, सौहार्द्र और सहयोग के कारण) सौ भाइयों (कौरवों, जिनमें प्रेम की कमी थी) से प्रचण्ड सशक्त थे।[2] राजशेखर स्पष्ट कहते हैं कि वैर (यथा कौरव-पाण्डव वैर) कुल को नाश कर देता है (कुलान्तकरं वैरं)।[3] महेन्द्र-पाल की मृत्यु के बाद उसके पुत्रों में वैर था जिससे उनमें युद्ध हुआ और इस घरेलू युद्ध से प्रणत सामन्तों ने भी अपना सिर उठाया और वे इस उत्तराधिकार युद्ध में भाग लेने लगे। सामन्तों का स्वतन्त्र होकर वंश की घरेलू राजनीति में भाग लेना दूसरा रोग था। मुसलमानों के आक्रमण नागभट प्रथम के समय से बराबर हो रहे थे। सशक्त प्रतिहार शासकों ने उन्हें पीछे खदेड़ कर उनकी शक्ति कुंठित कर दी थी। परन्तु दुर्बल शासकों से वंश-शक्ति क्षीण होने लगी और इस क्षीण-युग की समाप्ति इस वंश के अन्तिम राजा राज्यपाल से ही हो गयी। वह महमूद गजनवी के आक्रमणों का सामना न कर भाग गया। ऐसे भगोड़े क्षत्रियों (वृषलों, क्षुद्र क्षत्रियों) को जीने का अधिकार ही न था और मरने के बाद भी वे नरक-अधिकारी थे। क्षत्रिय का युद्ध से भागना महा पाप था—

यत्त्वया कुर्वता राज्यं पापं वै समुपार्जितम्।
क्षात्रधर्मं परित्यज्य पलायनपरो मृतः ॥[4]

जो क्षत्रिय अपने युद्ध-धर्म से विमुख (त्यक्त्वा धर्मं निज) होकर भाग जाता है और भागता हुआ शत्रु के सामने झुकता है (तवास्मिवादी दुष्टात्मा)

१—बाल भारत, पृ० २ :

इदं बालभारतं यस्य हि प्रचण्डपाण्डवमिति नामान्तरम्,

२—वही, पृ० २ :

पञ्च भ्रातरो वयं, पंचापिनामसमर्थास्तदभिनयने किं पुनरस्माकं शतं पितृव्यपुत्राः।

३—बाल भारत, पृ० ३

४—स्कन्द पु०, ७/२/७/८-९

और मारा जाता है तो उसकी गति नहीं है (मृतस्यैव गतिनास्ति नरके स विपच्यते)।[1] मिहिरभोज ने अपने पूर्व जन्मों में ऐसा पाप किया था। इन विचारों से तत्कालीन प्रवृत्ति का परिचय मिलता है जिनसे प्रभावित होकर चन्देल राजा ने पापी प्रतिहार राजा का बध कर दिया। अस्तु प्रतिहार-पराभव और पतन में उन गुणों और धर्मों का त्याग ही सहायक था जिन गुणों के कारण वे इतिहास में प्रतिहार (प्रतिहरणविधे यो प्रतिहार आसीत्) प्रसिद्ध हुए थे। डा० पुरी ने सत्य ही कहा है—

"The Gurjara Pratihara history after Mahendrapala is a record of disputed succession, a number of kings, some assuming different names, internal troubles, and the beginning of the decline. The first half of the tenth century is characterised by attempts to preserve the empire intact, though the Rashtrakuta invasion from the south had partially eclipsed the Gurjara glory. In fact Mahipala had to seek shelter elsewhere till his supporter—the Chandella king—Harshadeva helped him in getting back his throne......the last half of this century really represents the decline of the Gurjara Pratiharas, and the vast empire built by Bhoja and his son Mahendrapala was considerably reduced in size."[2]

महेन्द्रपाल के दो रानियाँ थीं। एक का नाम देहनागा देवी और दूसरी का नाम महादेवी या महीदेवी था। देहनागादेवी के पुत्र का नाम भोज (द्वितीय) था और वह ही महेन्द्रपाल की मृत्यु के बाद गद्दी पर बैठा। महीदेवी या (महादेवी) के पुत्र का नाम महीपाल था। संभवतः महीपाल के तीन अन्य नाम थे—क्षितिपाल, विनायकपाल और हेरम्बपाल जिसको कई अभिलेखों में उल्लिखित पाते हैं।

१—स्कन्द पु० ७/२/६/८७-८८

२—हि० गु० प्र०, पृ० ७४

रानी देहनागा देवी = महेन्द्रपाल = महीदेवी (महादेवी)
| |
भोज द्वितीय   विनायकपाल
९३१ ई० (एशियाटिक सोसाइटी (लेख)
महीपाल (असनी लेख) ९१४ ई०
= क्षितिपाल ९४८-९४ ई०
| (सियदोनि अभिलेख)
देवपाल

भोज द्वितीय

कुछ विद्वान विनायकपाल, हेरम्बपाल और क्षितिपाल को महीपाल के ही नामान्तर नहीं मानते हैं। परन्तु फिर भी वे विवाद ग्रस्त प्रश्नों का हल ढूंढ़ने में असमर्थ हैं। महेन्द्रपाल के दो पुत्रों—भोज द्वितीय और महीपाल—में संघर्ष अवश्य हुआ और उसमें भोज सफल होकर सिंहासन पर बैठा। परन्तु शीघ्र ही महीपाल चन्देल सामन्त हर्ष की सहायता से भोज द्वितीय को हटाकर गद्दी पर आ बैठा। ऊपर कहा जा चुका है कि कलचुरि सामन्त ने सहायता भोज प्रथम को दी थी न कि भोज द्वितीय को।

महीपाल (प्रथम)

ध्यान देने की बात है कि महेन्द्रपाल का गुरु राजशेखर जो महीपाल का भी गुरु था, कान्यकुब्ज के दरबार में ही यह सब देख रहा था। संभव है वह भोज द्वितीय का भी गुरु था। परन्तु भोज के चरित्र से सन्तुष्ट न था। उसने महीपाल के चरित्र और कार्यों की प्रशंसा की है; परन्तु भोज के विषय में पूर्ण रूप से मौन है। राजशेखर इस समय काफी वृद्धि था और वह केवल अपनी कला और प्रतिभा से इन राजकुमारों को शिक्षा दे रहा था। महीपाल में अवश्य ही राजगुण थे। इसीलिए राजशेखर ने उसकी प्रशंसा भी की है। राजशेखर प्रतिहारों और चन्देलों के मेल की ओर सकेत कर इस मैत्री की सराहना करते हैं।

हरचूड़ामणिरिन्दुस्त्रिजगद्दीपश्च दिनकरो देवः।
मासान्त-संगताविह लोकस्य हिताय वर्तते ॥[१]

१—बाल भारत, पृ० ३, १/३

यहाँ चन्द्र (शिव-शीश-शोभित) चन्देलों का परिचायक है और सूर्य (रघुवंश) प्रतिहारों का परिचायक है। दोनों का मेल ही लोक हितकारी था। राजशेखर ने विनायकपाल की प्रशंसा विनायक (गणेश) रूप में की है—

विनायको यः शिवयोरपत्यमर्धं पुमानर्धमिश्च देवः।[1]

शिव-पार्वती का पुत्र विनायक आधा मनुष्य है और आधा देवता है। राजशेखर ने हेरम्ब के विक्रमकर्म का भी उल्लेख किया है।[2] इसीलिए हमारा विचार है कि विनायकपाल और हेरम्बपाल महीपाल (=क्षितिपाल) के ही पर्याय थे। इससे भी महीपाल की बहुमुखी प्रतिभा और प्रभाव का आभास मिलता है। वह आर्यावर्त का महाराजाधिराज था—

रघुवंशमुक्तामणिना आर्यावर्त महाराजाधिराजेन।
श्रीनिर्भयनरेन्द्रनन्दनेनाधिकृताः सभासदः॥[3]

वही मध्यदेश नरेन्द्र (मज्झदेस-णरिन्द) भी था।[4] उसने भी विजय कर दिशाओं में कीर्तिस्तम्भ स्थापित किये।[5]

राष्ट्रकूट-संघर्ष

कृष्ण द्वितीय के बाद उसका पौत्र इन्द्र तृतीय शासक हुआ। कृष्ण द्वितीय की अन्तिम तिथि ९१२ ई० है। दो वर्ष के बाद ९१४ ई० के अन्त में उसकी मृत्यु हो गयी। ९१२ ई० में इन्द्र तृतीय शासक हुआ। इस समय प्रतिहार शासक महेन्द्रपाल की मृत्यु के बाद महीपाल प्रथम के सौतेले बड़े भाई भोज द्वितीय ने राज्य पर अधिकार किया था चापवंशीय सामन्त धरणीवराह के हड्डल (काठियावाड़) अभिलेख से ज्ञात होता है कि ९१४ ई० में महीपाल प्रतिहार शासक था।

खम्भात (कैम्बे) ताम्रपत्र लेख से ज्ञात होता है कि इन्द्र तृतीय ने कालपी (=कालप्रिय, उत्तर प्रदेश) में यमुना को पार कर महोदय पर आक्रमण किया।

१—बाल रामायण, पृ० ५, १/२०
२—वही, २/४०, ४२
३—वही, पृ० २
४—वही, पृ० ७५
५—वही, ३/६०

इसे ध्वस्त कर उसने इसे कुशस्थल बना दिया।[1] इन्द्र तृतीय के सेनानायक नरसिंह के पीछा किये जाने पर महीपाल प्रथम भाग गया।[2] संभवतः इसी समय चन्देल सामन्त हर्ष ने महीपाल को पुनः सिंहासन पर बिठलाया।

इन्द्र तृतीय भी थोड़े ही समय बाद मर गया। महीपाल प्रथम ने भी कर्णाट पर आक्रमण कर विजय प्राप्त की जैसा राजशेखर बताते हैं।

विजय

राजशेखर ने बाल भारत में महीपाल (प्रथम) की विजयों का उल्लेख करते हुए लिखा है—

नमितमुरलमौलिः पाकलो मेकलानां
रणकलितकलिंगः केलितटकेरलेन्दोः
अजनिजित कुलूतः कुन्तलानां कुठारो
हठहृत रमठ श्री महीपाल देवः ॥[3]

इस प्रकार उसने मुरल, मेकल, कुलूत, कुन्तल, कलिंग, केरल, कुलूत, कुन्तल और रमठ नामक देशों पर विजय पायी। इनमें मुरल, केरल और कुन्तल दक्षिणापथ के देश हैं।[4]

केरल—आज भी दक्षिण का प्रसिद्ध प्रदेश है।[5]

मुरल—यह हैदराबाद प्रान्त का उत्तरी भाग था।[6]

१—यस्माद्यद्द्विपदन्तघातविषमं कालप्रियप्रांगणम्।
तीर्णा यत्तुरगैरगाधयमुना सिन्धुप्रतिस्पर्धिनी ॥
येनेदं हि महोदयारिनगरं निर्मूलमुन्मीलितम्।
नाम्नाद्यापि जनैः कुशस्थलमिति ख्यातिं परां नीयते ॥

यहां कालप्रिय का अर्थ डॉ० त्रिपाठी ने उज्जैन लिया है। यह गलत है। कालप्रिय कालपी ही है जो यमुना तट पर बसा है। उज्जैन में यमुना नहीं है। इसका ध्यान नहीं रखा और न उज्जैन कनौज के रास्ते में ही है। डॉ० विमलचन्द्र पाँडे भी उज्जैन ही लेते हैं। डॉ० पाठक (उ० भा० रा० इ०, पृ० १५९) भी यही गलती करते हैं। कालप्रिय उज्जैन का महाकाल नहीं है।

२—अल्टेकर, राष्ट्रकूटाज, पृ० १०१-१०२

३—बाल भारत, पृ० २, १/७

४—काव्यमीमांसा, ९३/२५-२८

५—प्राचीन भारत का भौगोलिक स्वरूप, पृ० ६९

६—वही, पृ० ७०

कुन्तल—कर्पूर मंजरी में विदर्भ नगर (बरार) को कुन्तल में स्थित बताया गया है। इस समय यहां 'बल्हरा' (बल्लभ राज) या राष्ट्रकूट राजा राज्य करते थे।[1]

मेकल—यह चेदि राज्य (बघेल खंड) था जहां कलचुरि शासक राज्य करते थे। राजशेखर कहते हैं—

शिशुपालोमहीपालो मेकलानांकुलोद्भवः[2]

कलिंग—प्रसिद्ध उड़ीसा देश का भाग है।[3]

कुलूत—कांगड़ा प्रान्त है।[4]

रमठ—पंजाब का एक प्रान्त।

पंजाब प्रदेश पर भोज का अधिकार था। परन्तु महेन्द्रपाल के राज्यकाल में काश्मीर के राजा ने इसे जीतकर ठक्किय वंश के राजा को वापस दिला दिया था। अतः महीपाल ने भी, ऐसा प्रतीत होता है, कि कुलूत और रमठ प्रदेशों को जीता। इसी प्रकार इन्द्र तृतीय की मृत्यु के बाद दुर्बल राष्ट्रकूट वंश को देखकर उसने कुन्तल की भी विजय की। परन्तु ऐसा भी प्रतीत होता है कि राजशेखर ने अपने नाटक में अपने नायक की दिग्विजय दिखाने के लिये 'अनुप्रास' युक्त देशों के नाम चुन कर लिख दिये यथा—मुरल मेकल (पहली पंक्ति), कलिंग, केरल (दूसरी पंक्ति) और कुलूत कुन्तल (तीसरी लाइन)। जब तक अन्य साक्ष्य इन विजयों का समर्थन नहीं करते हैं तब तक इन पर अधिक विश्वास नहीं किया जा सकता।

क्षेमीश्वर के चण्डकौशिकम् नामक नाटक के आधार पर भी कर्णाट विजय सिद्ध होती है।[5] ऊपर कहा गया है कि महीपाल ने कुन्तल विजय की थी। अतः उसकी कर्णाट विजय में संदेह नही है।

१—प्राचीन भारत का भौगोलिक स्वरूप, पृ० ६३-६४
२—बाल भारत, पृ० १५, १/६४
३—प्राचीन भारत का भौगोलिक स्वरूप, पृ० ८८
४—वही, पृ० ६३
५—हि० गु० प्र०, पृ० ८४ :

यः संश्रित्य प्रकृतिगहनमार्यचाणक्य नीतिं।
जित्वा नन्दान् कुसुमनगरं चन्द्रगुप्तो जिगाय।।
कर्नाटत्वं ध्रुवमुरगतानद्य तानेव हन्तुं।
दोर्दर्पाढ्यः स पुनरभवच्छ्रीमहीपालदेवः।।

अतः यह सिद्ध होता है कि प्रारम्भ के कुछ उपद्रवों के अतिरिक्त महीपाल प्रथम का राज्य सशक्त और समृद्ध बना रहा और महीपाल प्रथम अपने पिता तथा पितामह, महेन्द्रपाल व भोज, की नीति का ही अनुसरण करता रहा। पश्चिम में कठियावाड़ तक उसका अधिकार अक्षुण्ण बना रहा। पूर्वी पंजाब पर अधिकार था। पालों के उत्कर्ष से पूर्व में उसके साम्राज्य से बिहार का कुछ भाग निकल गया, जैसा कि नारायणपाल के ५४ वें राज्यवर्ष का अभिलेख बिहार में मिलने से ज्ञात होता है। राजशेखर ने भी पूर्व की ओर बिहार-बंगाल के किसी जनपद का अपने बाल भारत में उल्लेख नहीं किया है।

महीपाल के उत्तराधिकारी

महेन्द्रपाल की मृत्यु के बाद उसके भाइयों में गड़बड़ी और विभिन्न नामों— क्षितिपाल, महीपाल, विनायकपाल, हेरम्बपाल और भोज तथा उनके सम्बन्धों में भी अस्पष्टता है। हमने क्षितिपाल, महीपाल, विनायकपाल तथा हेरम्बपाल को एक ही व्यक्ति के विभिन्न नाम माना है। परन्तु कुछ लोग ऐसा नहीं मानते हैं।

विनायकपाल ने ९४२ ई० तक शासन किया और उसके बाद उसका पुत्र **महेन्द्रपाल द्वितीय** (९४५-४६ ई०) राजा हुआ। आगे के १५ वर्षों में निम्नलिखित राजाओं के उल्लेख मिलते हैं।

१— **देवपाल** (९४८-४९) वह क्षितिपाल का पुत्र हुआ।

२—**विनायकपाल द्वितीय** (९५३-५४ ई०)

३—**महीपाल द्वितीय** (९५५ ई०)

४—**विजयपाल** (९६० ई०), उसे क्षितिपाल का उत्तराधिकारी कहा गया है।[1]

इन राजाओं के परस्पर सम्बन्धों में इतनी अस्पष्टता है कि जितने विद्वान हैं, उतने ही मत हैं। इससे इतना स्पष्ट है कि प्रतिहार वंश उन्नति के शिखर पर पहुंच कर नीचे उतर रहा था। शक्ति क्षीण हो चुकी थी। विपत्तियां, सामन्त-विरोध और बाह्य आक्रमण प्रबल थे। इन भीषण प्रवाहों को रोकने के लिए प्रतिहार शासकों में न तो नागभट और भोज की तरह क्षात्रधर्म परायणता ही थी और न परस्पर भ्रातृ-भक्ति ही। शरीर दुर्बल होने पर रोग बढ़ते हैं और उन रोगों का सही इलाज न हो तो वह घातक क्षय रोग हो जाता है।

१—एज ऑफ इम्पीरियल कनौज, पृ० ३७

राजशेखर ने रोगों का निदान किया। उसने रामायण और महाभारत के नाटकों से कान्ता-सम्मित वाणी में उपदेश दिये। परन्तु उनमें कुलान्तकारी वैर का अन्त नहीं हुआ। इन रोगों के साथ साथ स्वयंवर-पद्धति ने भी राजवंश के पतन में सहायता दी जैसा कि बालरामायण और बालभारत से सिद्ध होता है। राज्य के स्थिर होने के लिये राजा में ३६ गुणों का उपदेश भोज को दिया गया था।[१] बाद के राजाओं में इन गुणों का अभाव ही इस वंश के पतन में सहायक सिद्ध हुआ।

परतापगढ़ (दक्षिण-पूर्व राजस्थान) में चाहमानों ने महेन्द्रपाल द्वितीय को अपना अधिराज माना (९५४-४६ ई०)। परन्तु ९४५ ई० में ही चन्देलों ने गुर्जर-प्रतिहारों को पराजित कर कालञ्जर पर अधिकार कर लिया। इस प्रकार सामन्तों ने भी अपनी शक्ति बढ़ा ली थी। जो भी सम्राटों के नाम उपाधियों के साथ भी मिलते हैं उनमें अब 'परमेश्वर' का स्वरूप, शक्ति और गुण न थे। वे अब नाम मात्र के महाराजधिराज परमेश्वर थे जो एक धक्के में धराशायी हो सकते थे।

राष्ट्रकूटों के भी उत्तरी अभियान होते रहे। चन्देल शासक धंग कान्य-कुब्ज के शासक की प्रभुता को मिटाकर स्वतन्त्र हो गया। ग्वालियर में भी कच्छपघातों (कछवाहे राजपूतों) का ज़ोर बढ़ा। शाकम्भरी चाहमानों ने भी अपनी शक्ति बढ़ा कर स्वतन्त्र सत्ता स्थापित की। प्रतिहारों की रही सही प्रतिष्ठा भी महमूद गजनवी के आक्रमणों से नष्ट हो गयी, जब राज्यपाल अपनी प्रजा और राज्य को अरक्षित छोड़कर भाग गया। चन्देल शासक विद्याधर ने उस नीच क्षत्रिय का बध करवा दिया। त्रिलोचन पाल इस वंश का अन्तिम राजा (१०२७ ई०) था।

Thus the Pratiharo dynasty came to an inglorious end.

१—अवस्थी, स्टडीज़ इन स्कन्द पुराण, पार्ट वन, पृ० २४२-२४३

अध्याय सात

पालवंश

"The age of the Palas is not only important in the political history of India but also a remarkable age in cultural history of the country." —R. C. Majumdar

गुप्त साम्राज्य में बंगाल का अधिकांश भाग सम्मिलित था। परन्तु गुप्त साम्राज्य के बाद वहां अराजकता फैल गयी। जिस समय हर्षवर्धन अपना साम्राज्य बना रहा था उसी समय शशांक भी वाराणसी से लेकर वंग तक सम्राट था। उसे गौडाधिप् कहा गया है। उसकी मृत्यु के बाद पुन: वहां अराजकता फैल गयी और यशोवर्मन् तथा ललितादित्य मुक्तापीड ने अपनी-अपनी दिग्विजयों में बंगाल को रौंद डाला। अत: वहां की अरक्षित जनता ऊबी हुई थी। मात्स्य न्याय[1] से पीड़ित जनता ने गोपाल नामक एक वीर पुरुष का वरण किया।[2] इससे वहां की जन-चेतना का परिचय मिलता है कि मात्स्य न्याय को समाप्त करने के लिये ही जनता ने लक्ष्मी (राजलक्ष्मी) का हाथ गोपाल को सौंप दिया।

तारानाथ के अनुसार गोपाल का जन्म पुंड्रवर्धन (उत्तरी बंगाल) में क्षत्राणी के उदर से हुआ था। लड़कपन में यह चांड का उपासक था। स्वप्न में उसे देवी का आदेश मिला कि वह खसपर्ण के बिहार में जाये। वहां राज्य के लिये प्रार्थना करते हुए उसे दैवी प्रेरणा हुई कि वह पूर्व की ओर जाय। उस समय भेंगल का राज्य शासक-हीन था। कई राजा चुने गये थे परन्तु वे सभी एक नागस्त्री द्वारा मार डाले गए थे। गोपाल ने उस स्त्री को मार डाला और जनता ने उसे अपना राजा चुन लिया।[3] इस प्रकार बौद्ध तारानाथ के विवरण

१—जहा बलवान दुर्बलों को पीड़ित करते हैं उसे मात्स्यन्याय कहते हैं; यथा पानी में बड़ी मछली छोटी मछली को खा जाती है।

२—धर्मपाल का खालिमपुर ताम्रपत्र लेख, श्लोक ४:

मात्स्यन्यायमपोहितुं प्रकृतिभिर्लक्ष्म्याः कर ग्राहितः।
श्री गोपाल इति क्षितीश शिरसां चूड़ामणिस्तत्सुतः॥

३—I. H. Q., VII, pp. 530-31; Ibid., XVI, pp. 219; D. M., p. 324

से भी सिद्ध होता है कि गोपाल को जनता ने चुनकर राजा बनाया। रामचरित के अनुसार वरेन्द्र (उत्तरी बंगाल) पालों की जनक-भू ही थी। उसके पिता का नाम वाप्यट और पितामह का नाम दयितविष्णु था। उसका पिता एक सेनानायक था। गोपाल का चुनाव ही सिद्ध करता है कि वह एक पराक्रमी, कुशल योद्धा और जन-प्रिय शासक था जिसने अपने व्यक्तित्व और चरित्र से जनता को प्रभावित कर लिया था। इस वंश के अधिकांश राजाओं के नामान्त में 'पाल' शब्द मिलने से ही इस वंश को पाल वंश कहा गया है।

इस वंश के संस्थापक गोपाल की उपलब्धियों के विषय में अधिक ज्ञात नहीं है। परन्तु उसने अपने पुत्र और उत्तराधिकारी धर्मपाल को एक संगठित राज्य सौंपा। उसका राज्य मगध पर जमा था और इसकी राजधानी ओदन्त-पुरी थी। वह बौद्ध धर्मावलम्बी था जिसने नालन्दा में एक बिहार की स्थापना की। संभवतः उसने ७५० ई० से ७७० ई० तक राज्य किया।

धर्मपाल

येभूवन् पृथु रामराघव नलप्राया धरित्री भुज—
स्तानेकत्र दिदृक्षुणेव निचितान् सर्वान् समस्वेधसा।
ध्वस्ताशेष नरेन्द्रमानमहिमा श्री धर्मपालः कलौ॥

गोपाल के बाद उसका पुत्र धर्मपाल शासक हुआ जिसने उत्तरी भारत में एक विशाल संगठित साम्राज्य की स्थापना की। उसके समसामयिक प्रतिहार और राष्ट्रकूट शासक भी उत्तरी भारत के प्रभुत्व के लिये प्रयत्नशील थे। अतः स्पष्ट है कि उत्तरी भारत में त्रिकोणात्मक संघर्ष[1] का वातावरण तैयार था।

पाल–प्रतिहार–राष्ट्रकूट

वत्सराज और धर्मपाल

जिस समय धर्मपाल राजसिंहासन पर आया प्रतिहार शासक वत्सराज अवन्ति[2] (पश्चिमी मालवा) में शासन कर रहा था। उसने अपने विजय-अभियान में धर्मपाल को पराजित कर उसके दो श्वेत राजछत्र छीन लिए। [इ]ससे सिद्ध होता है कि धर्मपाल प्रतिहार शासक वत्सराज द्वारा पूर्ण रूप से [प]राजित हुआ था।

---

[1]—पीछे देखिए अध्याय ४

[2]—श्रीमदवन्तिभूभृतिनृपे वत्सादिराजे........।

वत्सर ज-ध्रुव और धर्मपाल

इसी समय दक्षिण के राष्ट्रकूट सम्राट ध्रुव ने उत्तरी भारत पर आक्रमण कर वत्सराज को पराजित किया और उससे उसने उन राजछत्रों को छीन लिया जिनको वत्सराज ने धर्मपाल से प्राप्त किया था। प्रतिहार शासक इस पराजय के बाद मरु देश में विलीन हो गया। राष्ट्रकूट शासक ने धर्मपाल को भी पराजित किया था परन्तु उसे शीघ्र ही अपने देश को लौट जाना पड़ा। इस प्रकार प्रतिहार राजा की पराजय और राष्ट्रकूट शासक के प्रत्यावर्तन से धर्मपाल को उत्तरी भारत में अपने सम्राज्यवादी विस्तार के लिए सुअवसर प्राप्त हो गया।

धर्मपाल ने भी अपनी नीति निपुणता और रणदक्षता से इस परिस्थिति का समुचित लाभ उठाया। अभियानों और विजय द्वारा उसने अपने आप को उत्तरी भारत का स्वामी बना दिया। उसके खालिमपुर ताम्रपत्र लेख से ज्ञात होता है कि वह सम्पूर्ण विजय को ही जीतने अर्थात् दिग्विज[१] करने के लिए उसकी सेना के हाथियों ने चारों समुद्रों में स्नान किया था। इस प्रकार सज्जनों से स्तुति-चरित्र वाला धर्मपाल सम्पूर्ण पृथ्वी मण्डल का एक राट् बन गया था—

स्वामी भूमीपतीनामखिलवसुमतीमण्डल शासदेकः।[२]

इसी अभिलेख में आगे बताया गया है कि उसने कान्यकुब्ज में एक दरबार किया था जहाँ पाञ्चाल वृद्धों ने उसके स्वामित्व को स्वीकार किया था और भोज, मत्स्य, मद्र, कुरु, यदु, यवन, अवन्ति, गन्धार और कीर के राजाओं ने नतमस्तक होकर धर्मपाल के प्रभुत्व को मान लिया। परन्तु धर्मपाल ने कनौज के सिंहासन पर चक्रायुध को अपने सामन्त रूप में नियुक्त किया। नारायण पाल के भागलपुर दानपात्र से ज्ञात होता है कि धर्मपाल ने इन्द्रराज को पराजित करने के बाद महोदयश्री प्राप्त की और इसे पुनः चक्रायुध को दे दी। इससे यही ज्ञात होता है कि धर्मपाल ने कन्नौज के इन्द्रायुध को पराजित कर कन्नौज पर अधिकार कर लिया और बाद में इन्द्रायुध के स्थान पर चक्रायुध को अपने अधीन सामन्त रूप में स्थापित कर दिया। धर्मपाल का यह कार्य उसकी दूरदर्शिता का परिचायक है क्योंकि इससे अपने राज्य और प्रतिहार राज्य के बीच कान्यकुब्ज पर आक्रमण किये हुए बिना प्रतिहार पाल राज्य त[illegible]

१—धर्मपाल का खालिमपुर अभिलेख, श्लोक ७
२—वही, श्लोक ६

नहीं पहुंच सकते थे। भोज के ग्वालियर प्रशस्ति में बताया गया है कि चक्रायुध धर्मपाल के अधीन था। इस प्रकार स्पष्ट है कि धर्मपाल ही कन्नौज का वास्तविक सम्राट था और उत्तरी भारत में उसकी प्रभुता कई सामन्त शासकों द्वारा कन्नौज के दरबार में मान ली गई थी। उदय-सुन्दरी कथा के लेखक सोढ्ढल ने सत्य ही उसे उत्तरापथ स्वामी कहा है।

देवपाल देव के मुंगेर ताम्रपत्र लेख से ज्ञात होता है कि दिग्विजय के समय धर्मपाल के सैनिकों ने केदार, गंगा-सागर-संगम, गोकर्ण और अन्य तीर्थों में स्नान किया था। केदार हिमालय के गढ़वाल प्रदेश में स्थित केदार नाथ ही है। गंगा-सागर-संगम तो गंगा-सागर ही है। गोकर्ण की स्थिति नैपाल में बताई गई है। इस प्रकार धर्मपाल ने अपने आपको उत्तरी भारत का सार्वभौम सम्राट बना लिया। उसके साम्राज्य में बंगाल और बिहार प्रदेश सम्मिलित थे जिन पर वह स्वयं शासन करता था। कन्नौज का राज्य भी उसके अधीनस्थ था। उत्तर पश्चिम में मद्र (पंजाब में स्यालकोट के आस-पास का क्षेत्र) कीर, (कांगड़ा प्रान्त, पूर्वी पंजाब) और सुदूर सीमान्त पर स्थित गांधार (पेशावर, रावलपिंडी) तक उसका प्रभाव फैल चुका था। यदु (गुजरात-काठियावाड़ के यादव) और मत्स्य (जयपुर, अलवर और भरतपुर) तथा अवन्ति (मालवा) भी उसके प्रभाव क्षेत्र में सम्मिलित थे। ऐसा प्रतीत होता है कि अवन्ति सम्राट गुर्जर नरेश ही था जिसने धर्मपाल के प्रभुत्व को मान लिया था। यवन सिन्ध में बसे हुए अरब ही थे जिनको पाल शासक ने पराजित किया था इस प्रकार उसका साम्राज्य पश्चिम में पंजाब से लेकर पूर्व में बंगाल तक और उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में मध्य भारत और बरार (भोज) तक फैला हुआ था। इस प्रकार धर्मपाल उत्तरी भारत का एक सार्वभौम सम्राट था।

नागभट द्वितीय—धर्मपाल—गोविन्द तृतीय

परन्तु धर्मपाल यह प्रभुत्व, निर्विरोध रूप से, अधिक समय तक न भोग सका। वत्सराज के पुत्र नागभट द्वितीय ने भी उग्र साम्राज्यवादी नीति का अनुसरण कर कनौज पर आक्रमण किया। उसने वहाँ चक्रायुध को पराजित कर गद्दी से हटा दिया और स्वयं कान्यकुब्ज का सम्राट बन बैठा। भोज के ग्वालियर लेख से पता चलता है कि उसने युद्ध में वगपति को भी पराजित किया। यह वंगपति धर्मपाल ही था।

किन्तु राष्ट्रकूट सम्राट ध्रुव के पुत्र और उत्तराधिकारी गोविन्द तृतीय ने उत्तरी अभियान में नागभट द्वितीय को पराजित किया। पाल सम्राट

धर्मपाल और चक्रायुध ने भी स्वयं ही गोविन्द तृतीय को आत्म सम्पर्ण कर दिया। इस प्रकार नागभट द्वितीय की सफलताओं पर राष्ट्रकूट आक्रमण ने पानी फेर दिया तथा धर्मपाल जीवन पर्यन्त एक महान शासक के रूप में राज्य करता रहा। इससे इतना अवश्य हुआ कि धर्मपाल का कनौज पर प्रभुत्व समाप्त हो गया जहाँ अब नागभट द्वितीय ने प्रतिहारों की शक्ति स्थापित की। खालिमपुर लेख में पाटलीपुत्र को एक विस्तृत साम्राज्य की राजधानी बताया गया है।

मूल्यांकन

तत्कालीन उत्तरी भारत के इतिहास में धर्मपाल निस्सन्देह एक महान् शासक था जिसने प्राचीन भारत के प्रथित सम्राटों—पृथु, राघवराम, नल इत्यादि राजाओं— को महिमा को भी मात कर दिया था।[१] उसकी सेना मान्धाता[२] (प्राचीन चक्रवर्ती सम्राट) के समान थी, जिसमें हाथी और घोड़े[३] विशेष महत्व रखते थे। उसने अपनी अश्व सेना से बहुत से उत्तरी भारत के राजाओं को अपना करद सामन्त बनाया था।[४] धर्मपाल ने अपने सैन्य बल से ही समस्त जम्बूद्वीप के राजाओं को नतमस्तक किया था।[५] देवपाल के नालन्दा ताम्रपत्र लेख से पता चलता है कि उसने वर्णों को (चारों वर्ण के लोगों को) अपने-अपने धर्म के पालन में लगाया तथा यहीं पर यह भी बताया गया है कि वह शास्त्रार्थ का भी उन्नायक था।[६] जैन ग्रन्थ बप्पभट्टि चरित से ज्ञात होता है कि धर्मपाल की राजसभा में शास्त्रार्थ हुआ था।[७] वह तीर्थ-यात्रा और तत्सम्बन्धी अन्य धार्मिक क्रियाओं को करने वाला था।[८] इस प्रकार राजाओं का अधिराज (एकाश्रयो भूभृताम्) और शौर्य का घर (शौर्यालयो) धर्मपाल प्राचीन मर्यादाओं का पालन करने वाला था। (मर्यादापरिपालनैकनिरत: श्री धर्मपालो नृप:)।[९]

१—धर्मपाल का खालिमपुर ताम्रपत्र लेख, श्लोक १०
२—वही, श्लोक ११
३—वही, पंक्ति २७
४—वही, पंक्ति २७
५—वही, पक्ति २८
६—देवपाल का नालन्दा ताम्रपत्र लेख, श्लोक ४
७—पीछे देखिए अध्याय ५, पृष्ठ १३९
८—देवपाल का नालंदा लेख, श्लोक ७
९—नारायणपाल का भागलपुर लेख, श्लोक २

इस प्रकार स्पष्ट है कि तत्कालीन भारत में धर्मपाल ने अपनी विजयों द्वारा एक सशक्त साम्राज्य की स्थापना की। राजनय (डिप्लोमेसी) और प्रज्ञा का सहारा लेते हुए ही उसने राष्ट्रकूटों के साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किया और अपना विवाह राष्ट्रकूट राजपुत्री से किया। यह उसकी कूटनीति ही थी। उसने सुचारु शासन व्यवस्था द्वारा राज्य में शान्ति स्थापित की। समृद्धि भी यथेष्ट थी जिसने विद्या और कला की उन्नति को प्रोत्साहित किया। वह बौद्ध धर्म का मानने वाला (परम सौगत) था। परन्तु अन्य धर्मों के प्रति भी उसने सहिष्णु नीति अपनायी। प्रसिद्ध विक्रमशिला विश्व विद्यालय की स्थापना उसी ने की जो तत्कालीन जगत में शिक्षा और संस्कृति का एक प्रसिद्ध केन्द्र था। धर्मपाल का एक अन्य नाम विक्रमशील भी था। विक्रम शिला की भांति ही उसने ओदन्तपुरी के प्रसिद्ध बिहार की भी स्थापना करायी और यह भी विद्या का प्रसिद्ध केन्द्र बन गया।

डा० बी० पी० सिनहा के अनुसार—

"Dharmapala was a great conqueror. He established an extensive empire in the teeth of bitter opposition.............. Dharmapala was a real empire-builder.[१]

अर्थात् धर्मपाल एक महान् विजेता था, जिसने उग्र विरोध और संघर्ष के वातावरण में विशाल साम्राज्य स्थापित किया।

डा० आर० सी० मजूमदार का मत है—

"Dharmapala was undoubtedly the greatest king that ever ruled in Bengal, and made his position supreme in North India."[२]

अर्थात् धर्मपाल बंगाल का श्रेष्ठ सम्राट था जिसने उत्तरी भारत में अपनी सार्वभौम सत्ता स्थापित की। इस प्रकार धर्मपाल निस्सन्देह महान् विजेता, कुशल शासक, विद्या तथा कला का आश्रयदाता और एक धार्मिक सम्राट था। उसके प्रोत्साहन से ही पाल-कला का जन्म और विकास हुआ। प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान हरिभद्र उसकी राजसभा में रहता था।

१—डिक्लाइन ऑफ मगध, पृ० ३६३
२—ऐन्शेन्ट इण्डिया, पृ० २८२

देवपाल

"Devapala was the greatest emperor of the Pala dynasty."

Dr. B. P. Sinha.

धर्मपाल की राष्ट्रकूट वंशजा पतिव्रता पत्नी रण्णदेवी ने श्री देवपाल नामक पुत्ररत्न को जन्म दिया, जिसका प्रसन्न मुख, निर्मल मन, संयत वाणी, और शरीर पवित्र कर्मों के करने में लगा था।[1] ऐसा सुयोग्य सुपुत्र धर्मपाल के बाद पाल सिंहासन पर बैठा। देवपाल ने न केवल धर्मपाल के राज्य को पाया, प्रत्युत उसके महान गुणों को भी पिता से पाया। उसका राज्यकाल पाल साम्राज्यवाद के उत्कर्ष का विशिष्ट स्वरूप है, जब पालों की प्रभुता में नये नये रत्न जड़े गये। उसने उग्र आक्रामक नीति का अनुसरण कर दिग्विजय की (विजयक्रमेण)। अपने हाथियों द्वारा उसने विन्ध्याटवी को रौंद डाला।[2] उसे उसकी विजयों में जयपाल से विशेष सहायता मिली। अभिलेखों से इस प्रकार स्पष्ट है कि उस पराक्रमी शासक ने प्राग्ज्योतिष (ब्रह्मपुत्र की घाटी, कामरूप), उत्कल (उड़ीसा), हूण, गुर्जरों और द्राविडों को पराजित किया।

देवपाल के मुंगेर ताम्रपत्र लेख से ज्ञात होता है कि उसने विन्ध्यावटी और काम्बोज तक विजय की। नारायणपाल के समय के बदल स्तंभलेख से ज्ञात होता है कि मंत्री दर्भपाणि की सहायता से देवपाल ने रेवा के स्रोत (मेकल पर्वत और देश) से लेकर हिमालय तक विजय प्राप्त की। उसके मन्त्री केदार मिश्र की सहायता से समुद्रों से घिरी हुई पृथ्वी पर अधिकार प्राप्त किया[3] और उत्कलों, हूणों तथा गुर्जरों को पराजित किया।

देवपाल और गुर्जर-प्रतिहार

देवपाल के समकालीन नागभट द्वितीय, रामभद्र और मिहिरभोज नामक प्रतिहार शासक थे। नागभट द्वितीय एक सशक्त शासक था जिसने कनौज पर अधिकार कर लिया था और कनौज पर रामभद्र तथा मिहिरभोज का भी शासक बना रहा। अतः सम्भव है कि देवपाल ने प्रतिहार राज्य के कुछ पूर्वी प्रान्तों (कोसल) पर अधिकार कर लिया हो और रामभद्र के अल्पकालीन

१—देवपाल का नालन्दा लेख—पंक्ति १४, १६ शुच्याचारा·······श्लाघ्या पतिव्रतासौ मुक्तारत्नं समुद्रशुक्तिरिव श्री देवपालदेवम् प्रसन्न-वक्त्रं सुतमसूत्॥ निर्मल मनसो वाच संयतः कायकर्मणि च यः स्थितः शुचौ।

२—वही, पंक्ती १७

३—दि डिक्लाइन ऑफ़ मगध, पृ० ३७१

शासन काल में भी देवपाल का अधिकार वहाँ बना रहा । मिहिरभोज ने भी इन पूर्वी प्रान्तों पर अधिकार करने का प्रयत्न किया । परन्तु प्रारम्भ में उसे भी सफलता न मिली । आगे चलकर धर्म-पुत्र (देवपाल) से उसने लक्ष्मी छीन ली । इस कथन से भी यही समझना चाहिए कि जिन पूर्वी प्रान्तों पर देवपाल ने अधिकार कर लिया था, उन्हें भी भोज ने पुनः जीतकर अपने राज्य में मिला लिया । देवपाल यथापूर्व अपने राज्य में शासन करता रहा ।

राष्ट्रकूट नरेश

पराजित द्रविड़ नरेश की पहचान राष्ट्रकूट सम्राट अमोघवर्ष से की गयी है । संभव है कि इस समय राष्ट्रकूट राज्य में संकट होने से पाल नरेश ने विन्ध्य को पार कर राष्ट्रकूट राज्य पर आक्रमण किया हो । कुछ विद्वान पराजित द्रविड़ सम्राट की पहचान पाण्ड्य राजा श्रीमार श्री वल्लभ से करते हैं । एक लेख में बताया गया है कि पाण्ड्य शासक ने गांग, पल्लव, चोल, कलिंग और मगध आदि देशों के राजाओं को पराजित किया । यहां मगध के राजा की पहचान पाल सम्राट से की गयी है ।

देवपाल के मुंगेर ताम्रपत्र लेख में देवपाल के राज्य का विस्तार उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में रामेश्वरम् (सेतुबन्ध) तक बताया गया है । इतना निश्चित ही है कि देवपाल उत्तरी भारत का एक महान सम्राट था जिसका आधिपत्य बङ्गाल और बिहार में स्थापित था । उसने अपने पिता से, प्राप्त गौरव की रक्षा कर विद्या और कला को आगे बढ़ाया ।

उसके राज्य काल में सुवर्णद्वीप और यवद्वीप (यवभूमि = जावा) से भी भारत के सांस्कृतिक सम्बन्ध उन्नत दशा में थे ।

मूल्यांकन

जैसा कि ऊपर कहा गया है कि देवपाल एक शिष्ट, सौम्य और सुसंस्कृत सम्राट था जिसके राज्य-निर्माण में कई योग्य मंत्रियों और सेनापतियों ने सहायता दी । डॉ० सिनहा कहते हैं कि—

"All these favourable factors contribute to explain the golden days of the empire under him."[1]

उसने प्रतिहारों के साम्राज्यवादी विस्तार को रोका और स्वयं अपने पिता की विस्तारवादी नीति का अनुसरण करता रहा । वह बौद्ध धर्म का अनुयायी (परमसौगत) था । परन्तु वह अन्य धर्मों के प्रति सहिष्णु था ।

१—डिक्लाइन आफ़ मगध, पृ० ३७५

उसने नालन्दा और विक्रमशिला के प्रसिद्ध विहारों की उन्नति में सहायता दी। उसके समय में पाल साम्राज्य अपनी उन्नति के शिखर पर पहुंचा और उसकी मृत्यु के बाद ही इसका पतन भी प्रारम्भ हो गया।

पाल साम्राज्य का पतन

विग्रहपाल प्रथम

देवपाल की मृत्यु के बाद पाल-प्रतिष्ठा न बनी रह सकी। उसके पुत्र और उत्तराधिकारी विग्रहप्राल ने बहुत ही थोड़े समय तक शासन किया। तीन-चार वर्षों के बाद ही उसने राज्य-त्याग दिया। वह धार्मिक वृत्ति का शासक था।

नारायणपाल

विग्रहपाल अपने पुत्र नारायणपाल को गद्दी पर बिठा कर राजकार्य से मुक्त हो गया। नारायणपाल भी शान्तिप्रिय और धार्मिक शासक था। इन शान्तिप्रिय राजाओं के शासनकाल में पाल साम्राज्य का पतन प्रारम्भ हो गया। एक राष्ट्रकूट लेख से ज्ञात होता है कि अग-वंग के राजाओं ने अमोघवर्ष प्रथम की आधीनता मानी।। इससे यह सिद्ध होता है कि राष्ट्रकूट नरेश ने पाल राज्य पर आक्रमण किया था। प्रतिहारों ने भी इन दुर्बल पाल राजाओं के राज्यकाल में अपनी शक्ति का विस्तार बिहार और बंगाल में किया। महेन्द्रपाल का राज्य मगध और उत्तरी बंगाल में स्थापित हो चुका था।

इन दुर्बलताधों के राज्यकाल में ही सामन्तों ने भी अपने को स्वाधीन कर लिया। आसाम और उड़ीसा के राजा स्वतन्त्र हो गये।

इस प्रकार पाल साम्राज्य का पतन और पराभव पूर्ण रूप से हो रहा था। पाल राजाओं का आधिपत्य केवल बंगाल के कुछ भाग पर बना रहा। यद्यपि नारायणपाल ने बङ्गाल और बिहार में पाल-प्रभुत्व को पुनः स्थापित करने का प्रयत्न किया। सन् ६०८ ई० के आस-पास उसकी मृत्यु हो गयी।

उसके बाद उसका पुत्र राज्यपाल राजा हुआ। उसके बाद उसके दो उत्तराधिकारी गोपाल द्वितीय तथा विग्रहपाल द्वितीय हुए। इसी समय प्रतिहार साम्राज्य भी लड़खड़ा रहा था। नवोदित राजशक्तियों—चन्देलों और कलचुरियों-ने भी गौड, राढ़, अग और वंग पर अभियानों द्वारा विजय प्राप्त की। इन स्वतन्त्र राज्यों का उल्लेख ही सिद्ध करता है कि पाल राज्य टूट चुका था।

विग्रहपाल द्वितीय का पुत्र **महीपाल प्रथम** ९८८ ई० के आस-पास गद्दी पर बैठा। उसने अपनी शक्ति से पालवंश के लुप्त गौरव की पुनः प्रतिष्ठा स्थापित की। उसने उत्तरी और पूर्वी बङ्गाल को पुनः जीतकर अपने राज्य में सम्मिलित कर लिया। इस प्रकार १००० ई० में पुनः एक बार पाल वंश की शक्ति का विकास हुआ। बानगढ़ लेख में अपने पूर्वजों के राज्य को फिर से स्थापित करने के लिये महीपाल की प्रशंसा की गयी है।

उत्तरी बङ्गाल में कम्बोज वंश का शासन था और दक्षिण तथा पूर्वी बङ्गाल में चन्द्र राजाओं का राज्य था। महीपाल ने इनको ही पराजित कर पुनः पाल राज्य संगठित किया।

उसने उत्तरी बिहार पर भी पुनः पाल सत्ता स्थापित की। इस प्रकार सम्पूर्ण बिहार और बङ्गाल पर पालों का फिर अधिकार हो गया।

इसी समय चोल सम्राट राजेन्द्र चोल ने भी बङ्गाल पर आक्रमण किया और उत्तरी राढ़ जीत लिया। परन्तु इस आक्रमण से बङ्गाल पर कोई विशेष प्रभाव न पड़ा। यह एक ऐतिहासिक सत्य है कि महीपाल ने इस नष्ट प्राय वंश को कुछ समय के लिये नवजीवन प्रदान किया।

महीपाल के उत्तराधिकारी

महीपाल के बाद उसका पुत्र **नयपाल** राजा हुआ जिसे तिब्बती ग्रन्थों में मगध का शासक कहा गया है। इसी समय पालों और कलचुरि नरेशों में संघर्ष छिड़ गया। नयपाल के बाद उसका पुत्र **विग्रहपाल तृतीय** राजा हुआ। इस समय भी कलचुरि-पाल संघर्ष चलता रहा। अन्त में विग्रहपाल तृतीय और कलचुरि नरेश कर्ण में सन्धि हो गयी।

विग्रहपाल तृतीय के बाद महीपाल द्वितीय (१०७०-१०७५ ई०), शूरपाल (१०७५-१०७७ ई०), रामपाल (१०७७-११२० ई०), कुमारपाल (११२०-११२५ ई०), गोपाल तृतीय (११२५-११४४ ई०) और मदनपाल (११४४-११६१ ई०) शासक हुए। मदनपाल के तीसरे राज्य-वर्ष में ही गहड़वाल शासक गोविन्दचन्द्र ने मुंगेर तक विजय प्राप्त की। मदनपाल ने राज्य को बचाने का प्रयत्न किया। किन्तु असफल रहा। इसी समय उसे विजयसेन के साथ भी युद्ध करना पड़ा। गोपाल और धर्मपाल के प्रथित पालवंश का वह अन्तिम सम्राट था। इस प्रकार पालवंश जो भारत का एक प्रमुख राजवंश था लगभग ४०० वर्षों के बाद प्रभुता से हीन होकर गिर पड़ा। किन्तु उसके पतन के बाद भी उसकी विशिष्टाएं तत्कालीन कला कृतियों में अंकित देखने को मिलती हैं।

———

अध्याय आठ

चन्देलों का इतिहास

वेदोपवेदाङ्ग पुराणधर्मशास्त्रेतिहासादिभिरुच्छितश्री ।
सरस्वती पद्मधरा शशाङ्कसंकाशकान्तिः सहसाविरासीत ।। प्र० च० ५/६

चन्द्रान्वयपार्थिव पूजित पद्मधरा सरस्वती महामोहमलेच्छ-ध्वस्त देश में प्रकट हुई। दुर्ग-तारिणी सावित्री कविकण्ठ से राष्ट्र को जगा रही थी।

देवी को अभीष्ट था :—

औदार्य शौर्य रसिकाः सुखयन्तु भूपाः
सन्मार्गवासितधियो विलसन्तु लोकाः ।
वर्षन्तु बद्धपरितोषभरा पयोदाः
सारस्वतोत्सवमयाः कवयो भवन्तु ।।

समुद्रमंथन० (रूपकषटकं पृ० १६१, ३/१४)

चन्देलों का महत्व

"भारतीय इतिहास में चन्देलों का स्थान कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। विन्ध्य-मेखला और उसके जांगल प्रदेशों ने इतिहास के कई विकट कालों में भारत की राजनैतिक तथा सांस्कृतिक शक्ति का गोपान; संरक्षण तथा परिवर्धन किया है।.........उत्तर भारत में जब प्रतिहारों की शक्ति क्षीण होने लगी और पश्मिोत्तर से तुर्क आक्रमण शुरू हुए तब इन्हीं भू-भागों में एक प्रबल राजनीतिक शक्ति का उदय हुआ। तुर्कों की शक्ति इससे टकराकर लौट गयी और पश्चिमी पंजाब तक सीमित रही।"[1]

चन्देलों का युग धर्म तथा कला के क्षेत्र में भी अपनी प्रसिद्धि पा चुका है। उस युग के बने हुए खजुराहो के मन्दिर विश्व-विश्रुत हैं। उनकी कला-वास्तु, शिल्प और मूर्तियां-भारतीय कला के इतिहास में अपना विशेष महत्व रखती है। वे तत्कालीन जीवन की सुन्दर झांकी देती हैं।[2]

१—डॉ० राजवली पाण्डेय-आमुख पृ० ५ (चन्देल और उनका राजत्व काल)
२—डॉ० उर्मिला अग्रवाल—खजुराहो स्कल्पचर्स, देहली।

चन्देलों के उदय होने के पूर्व की राजनीतिक दशा —

प्रतिहार साम्राज्य के लड़खड़ाते ही मध्य भारत-बुन्देल खण्ड और दक्षिण कोशल-में कई राजवंशों का उदय हुआ । इनमें जेजक भुक्ति (जजहोति, जुझौती या आधुनिक बुन्देलखण्ड) के चन्देल और चेदि के कलचुरि प्रसिद्ध राजवंश थे । वैवाहिक सम्बन्ध द्वारा दोनों वंश आपस में सम्बन्धित थे । दोनों ही राजवंश प्रभुत्व के लिये प्रयत्नशील थे । दोनों ही वंश तुर्की आक्रमणों की बाढ़ को रोकते रहे ।

प्रतिहार साम्राज्य जिसने उत्तरी पश्चिमी भारतीय द्वार की रक्षा करते हुए मुस्लिम आक्रान्तों को मध्यदेश (गंगा-यमुना की घाटी) में घुसने नहीं दिया वह भी काल-वंश अशक्त होकर ध्वस्त हो गया । पुन: मध्यदेश में ऐसी कोई शक्ति नहीं रही जो बढ़ते हुए मुसलमानों के आक्रमणों को रोकती । जब तक बुन्देल खण्ड के चन्देल अपनी शक्ति को संगठित कर कन्नौज की ओर बढ़े, जहाँ अब भी दुर्बल प्रतिहार शासक अपनी आखिरी स्वांसे ले रहा था, महमूद गज़नवी के आंतक से सम्पूर्ण उत्तरी भारत त्रस्त और निरुत्साहित सा दिखलाई पड़ रहा था । यह सत्य है कि चन्देलों ने उसका विरोध किया और सीमान्त रक्षक शाही राजाओं की भी सहायता की परन्तु इसमें वे असफल रहे । वे मध्यदेश में भी शक्ति स्थापित न कर सके जो राष्ट्र का हृदय था । फलत: तुर्क आक्रमणकारी पंजाब से मध्यदेश की ओर बढ़ते गये । चन्देल शासक खजुराहो, कालञ्जर की ओर केन्द्रीभूत बने रहे । उन्होंने मध्य भारतीय राजनीति पर विशेष ध्यान दिया, जहाँ परस्पर चालुक्यों, परमारों और कलचुरियों में संघर्ष हो रहा था । आपसी युद्ध और वैर ने देश को गिरा दिया ।

उत्तरी पश्चिमी भारत

सिन्ध के अरब शासक प्रतिहारों से पराभूत होकर मुल्तान और मन्सूरा में ही अपनी शक्ति बनाये रख सके थे । प्रतिहारों के पतनोन्मुख होते ही वे भी अपनी शक्ति बढ़ाने लगे । काश्मीर, पंजाब और अफ़गानिस्तान के अधिकांश भागों पर शाही राजवंश का शासन था । नवोदित गज़नी शक्ति के साथ इसी वंश का संघर्ष प्रारम्भ हुआ । लमगन के युद्ध के बाद बराबर शाही साम्राज्य का ह्रास होता गया । शाही राजाओं ने सतत् और सचेष्ट प्रयत्न किया कि वे विदेशी आक्रान्ताओं से देश द्वार की रक्षा करें । आनन्दपाल, जयपाल, भीमपाल और त्रिलोचनपाल बराबर संघर्ष करते रहे । उन्होने इसी उद्देश्य से अन्य राजपूत

राजाओं की सहायता भी ली तथा शक्ति-संघ भी बनाये; परन्तु भारत का दुर्भाग्य ही था—

उपचितेषु परेष्वसमर्थतां व्रजति कालवशाद् बलवानपि ।

—शिशुपालवध, ६/६३

सत्य ही है कि काल के वशीभूत होकर सशक्त भारत भी शत्रु से पराभूत हुआ ।

यद्यपि शाही राजाओं को असफलता मिली और उनके अधिकार से अफगानिस्तान के भाग और पंजाब निकल गये । परन्तु महमूद गजनवी और उसके उत्तराधिकारियों को काश्मीर में सफलता न मिली । पंजाब और सीमान्त प्रदेश में गजनवी शासकों का अधिकार हो गया । चन्देल शासक भी बुन्देल खण्ड में ही लौट आये और वहीं से तुर्की आक्रमणों का विरोध करते रहे । न तो वे कान्यकुब्ज देश पर ही अधिकार कर सके और न मुस्लिम सत्ता को ही पंजाब और अफगानिस्तान से हटा सके । पंजाब पर मुस्लिम अधिकार हो जाने से ही भारतीय पराभव का इतिहास प्रारम्भ होता है ।

चेदि मण्डल

कलचुरियों ने दक्षिणी कोशल और निकटस्थ भागों में अपनी शक्ति जमा ली थी । निस्सन्देह वे तुर्कों को रोकने का प्रयत्न करते रहे । परन्तु जैसा कि ऊपर कहा गया है उनका भी ह्रास पारस्परिक युद्धों में होता रहा ।

यह भी सत्य है कि कलचुरियों को उत्तर प्रदेश (अन्तर्वेदी) में भी सफलता मिली और वे गोरखपुर तक अधिकार बढ़ाते चले गये, परन्तु वे भी विदेशी आक्रान्ताओं से देश को न बचा सके ।

मालवा

मालवा में भी परमारों ने प्रतिहारों के पतन होने के बाद ही अपनी शक्ति बढ़ाना प्रारम्भ कर दी । वे भी पर (शत्रु) को मारने में कुशल होने के कारण परमार कहलाये । ये शत्रु तुर्क ही थे जिनके साथ उनका विरोध-संघर्ष होता रहा । परन्तु शौर्य-प्रदर्शन तथा तत्कालीन राजनीतिक प्रवृत्ति के वशीभूत होकर वे भी चालुक्यों के साथ संघर्ष करते रहे । चाहमानों, चन्देलों और कलचुरियों के साथ भी सम्बन्ध बनते और बिगड़ते रहे ।

गुजरात

गुजरात में चालुक्य वंश शासन कर रहा था । कुमारपाल और सिद्धराज इसी वंश के प्रसिद्ध तथा प्रतापी शासक हुए हैं । इन्होंने भी विदेशियों को रोकने

का यथेष्ट प्रयत्न किया परन्तु यह भी राष्ट्र-दोष (परस्पर संघर्ष) से मुक्त न थे। परमारों से इनका उग्र विरोध चलता रहा। अतः ये भी राष्ट्र को आपत्ति और आँधी से बचाने में सफल सिद्ध न हुए।

बिहार-बंगाल

पाल साम्राज्य के पतन के बाद ग्यारहवीं शताब्दी के मध्य में सेन वंश का उदय हुआ। इसके पूर्व पाल वंश के अन्तिम दुर्बल शासक राज्य कर रहे थे। धर्मपाल और देवपाल की मृत्यु के बाद बंगाल और बिहार की भी दुर्दशा ही परिलक्षित होती है। दक्षिण से चोल भी आक्रमण कर रहे थे और आन्तरिक विद्रोह भी देश में अव्यवस्था बनाये हुए थे। इसी समय मुसलमानों के भी आक्रमण उत्तरी पश्चिमी सीमान्त तथा पश्चिमी भारत पर हो रहे थे। अस्तु स्पष्ट है कि जिस देश के महान शासकों—धर्मपाल और देवपाल—ने सुदृढ़ सत्ता स्थापित की थी, वही क्षेत्र पुनः मात्स्य न्याय (अराजकता) से पीड़ित था।

इस प्रकार चन्देल वंश के उदय होने के पूर्व उत्तरी भारत की राजनैतिक दशा शोचनीय थी। इन सभी वंशों में इतनी शक्ति थी कि वे विदेशियों से देश की रक्षा कर सकने में समर्थ थे। परन्तु उनके दुर्गुणों और दोषों ने तुर्कों को दुर्निवार्य बना दिया। यह उन शासकों की अचेतना का ही परिणाम था—

म्लेच्छो दुर्निवार्यो ह्यचेतनः।

वह भी काल-वश अशक्त होकर ध्वस्त हो गया।

चन्देल वंश की उत्पत्ति

जनश्रुति

चन्देल वंश का उदय भी अन्य राजपूत वंशों के समान विवादास्पद है। परम्परा और जनश्रुति के अनुसार चन्देलों का मूल सम्बन्ध चन्द्र देव से बताया जाता है। इस परम्परा के अनुसार चन्देलों का उदय हेमावती के गर्भ से हुआ जो काशी के गढ़वाल राजा इन्द्रजित के पुरोहित की पुत्री थी। कथा इस प्रकार है कि एक बार जब वह रति सरोवर में स्नान करने गयी तो चन्द्रमा और उसका संसर्ग हुआ। हेमावती को चन्द्रमा ने उसके गर्भ से पुत्र होने का वरदान दिया। चन्द्र ने यह भी कहा कि उससे जो पुत्र उत्पन्न होगा वह पृथ्वी का शासक तथा एक राजवंश का प्रवर्तक होगा। अविवाहित होने के कारण हेमावती को इससे विक्षोभ और खिन्नता भी थी। परन्तु चन्द्र ने उसे सान्त्वना देते हुए कहा कि "तुम चिन्तित न हो। पवित्र कर्णावती (केन नदी) के तट पर तुम्हारा वीर पुत्र जन्म लेगा। उसे तुम खर्जुरपुर

(खजुराहो) ले जाना। वहीं दान देना और यज्ञ करना । इस प्रकार वह प्रवीर पुत्र उसी क्षेत्र पर राज्य करेगा—

शुभ कर्णवती के तीर तुव पुत्र होव सुवीर ।
खज्जुरपुर फिरि जाय दिय दान जज्ञ कराय ।।
भुव पुत्र करिहै राजु म्हा कहतु नर्क समाज ।।[1]

इस प्रकार देव-प्रसाद के रूप में पुत्र प्राप्ति के वरदान को पाकर भी वह नर्क के भय से कांप रही थी। चन्द्र ने उसे कुछ अन्य धार्मिक क्रियायें भी करने का आदेश दिया—

षोडस वर्ष कुमार तब होइ भुर बल दाय ।
भाड्य जज्ञ करि भूमि तल पातक पुंज बहाय ।।

चन्द्र ने उसे विश्वास दिलाया कि उसका पुत्र पृथ्वी का महान शासक होगा (हेमावती तुव पुत्र बड़ छौनी छत्रिय होई)। यह आर्शीवाद देकर चन्द्रदेव वहां से बिदा हो गये। आगे चलकर उनकी भविष्य वाणी और बरदान सत्य सिद्ध हुआ—

काशिय तजि कालिंजर आइय बारमास तिय तंह बिलमाइय।
करि तीरथ अस्नान सुदाय। पुत्र काज सब देव मनाये ।।
छांड़ि कालिजर संदरिय गइय धाम इक सोय ।
रहिय ग्राम पति के सदन मंह भयो पुत्र एक जोय ।।

इस प्रकार हेमावती काशी छोड़कर कालञ्जर गई और वहां एक ग्राम-पति के घर में उसके पुत्र का जन्म हुआ जिसका नाम चन्द्रवर्मन् रखा गया; क्योंकि चन्द्र देव ने उसे सचेत कर दिया था कि यह वंश उसी समय तक चलता रहेगा जब तक इस वंश के शासकों के नामान्त में वर्मन् शब्द रहेगा। चन्द्रदेव ने पुनः आकर उसी गांव के पास एक बड़ा उत्सव (महोत्सव) किया। आगे चलकर यही स्थान महोत्सव नगर या महोबा कहलाया।

कालान्तर में जब चन्द्रवर्मन् सोलह वर्ष का हुआ उसने एक व्याघ्र का बध पत्थर के टुकड़े से कर दिया। इससे हेमावती को प्रसन्नता हुई और उसने पुनः चन्द्रदेव का स्मरण किया जिससे चन्द्रदेव प्रकट हुए और उसे पारस पत्थर देकर चले गये। इसी अनुश्रुति में यह भी बताया गया है कि सभी देवताओं ने यहां आकर और चन्द्रवर्मन् को अपनी शक्ति तथा वरदान दिया। कुबेर, बृहस्पति और चन्द्रमा ने उसे राजनीति की शिक्षा दी। आगे पारस

१—चन्द्र ब्रह्म उत्पत्ति

पत्थर की सहायता से उसने अपनी शक्ति को बढ़ाया सर्व प्रथम उसने कालन्जर पर अधिकार स्थापित किया। उसने स्नान कर नीलकण्ठ शिव की पूजा की तदन्तर अपनी शक्ति को बढ़ाना प्रारम्भ कर दिया। विशाल सेना की सहायता से उसने थोड़े ही समय में दो जनपदों पर अधिकार स्थापित कर लिया—

पंच प्रहर भीतर लिये जनपद जुगल छिड़ाय

उसकी शक्ति के भय से गहड़वालों ने काशी को छोड़ दिया। इस प्रकार ऐसा प्रतीत होता है कि काशी और कालन्जर पर चन्द्रवर्मन् का अधिकार हो गया था। माता की आज्ञा से चन्द्रवर्मन ने भाड्य यज्ञ कर दोनों को बहुत सा धन दान दिया तथा खज्जुरपुर और महोबा का शासक बन बैठा।

इस प्रकार इस जनश्रुति से चन्देलों का उदय चन्द्र और चन्द्रवर्मन् से सिद्ध होता है। स्थानीय क्षेत्रों में आज भी लोग इस पर विश्वास करते हैं। महोबा के कानून जो परिवार द्वारा सुरक्षित वंशावली से भी ज्ञात होता है कि चन्द्रवर्मन ने बुन्देलखण्ड के परिहारों को राजपद से हटाया।

अभिलेख—

अभिलेखों से ज्ञात होता है कि इस महान वंश की उत्पत्ति मुनी चन्द्रात्रेय से हुई (चन्द्रात्रेयमुनेर्महीयसि कुले—चन्द्रात्रेय नरेन्द्रानाम् वंशे[1]) । धंग के खजुराहो लेख में (वि. सं. १०११) बताया गया है—विश्वस्रष्टा आदि पुरुष से पवित्र चरित्र वाले मरीचि आदि पूर्व ऋषियों की उत्पत्ति हुई और उनमें अत्रि मुनि से महाज्ञानी मुनि चन्द्रात्रेय का जन्म हुआ। उनसे प्रसूत (पैदा हुआ-चला हुआ) यह चन्देल वंश प्रशंसनीय कुल था।[3] धंग के खजुराहो लेख

१—इण्डि०, एँन्टी० जिल्द १६, पृ० २०१, नान्यौर ताम्रपत्र लेख A

२—वही, जिल्द १६, पृ० २०८
वही, जिल्द २५, पृ० २०६
एपि० इण्डिका ४, पृ० १७५
वही, १६, पृ० १२
वही, २०, पृ० १२६, १३३, १३५.

३—वही, जिल्द १, पृ० १२५ : तस्माद्विश्वसृजः पुराण पुरुषादाम्नायधाम्नः कर्वेयेऽभूवन्मुनयः पवित्रचरिताः पूर्वे मरीच्यादयः ।तत्रात्रिः सुषुवे निरन्तर तपस्तीव्र प्रभाव सुतं चन्द्रात्रेयमकृत्रिमोज्ज्वलतरज्ञान प्रदीपं मुनाम् । अस्ति स्वस्ति विधायिनः स जगतां निःशेषविद्याविदस्तस्यालोपनताखिल श्रुतिनिधेर्वंशः प्रशंसास्पदम् ॥

(वि० सं० १०५६) में भी इसे अत्रि पुत्र चन्द्रात्रेय से उत्पन्न बताया गया है।[1] बटेश्वर लेख (वि० सं० १२५२) से ज्ञात होता है कि अत्रि की आँख से चन्द्र और चन्द्र से चन्द्रात्रेय की उत्पत्ति बतायी गयी है।[2] धंग और जयवर्मदेव के खजुराहो लेख (वि० सं० १०५६) में इस वंश को महावंश (पंक्ति ८) कहा गया है। इसी लेख में इसके पहले इस वंश की महानता के विषय में बताया गया है कि चन्द्र से लेकर अत्रि के तेज से युक्त चन्द्रात्रेयवंश के राजाओं ने पृथिवी का उपभोग अपनी प्रचण्ड और अक्षत भुजाओं द्वारा किया। सन्मार्ग के प्रिय चन्द्रात्रेय वंशजों ने पृथिवी को पवित्र कर दिया। वे सत्यव्रत के पालन करनेवाले थे। उन्होंने कभी भी किसी से अपने प्राणों की भीखमांग कर अपने मनको दुःखी नहीं किया था। दुर्विनीत सामन्तों की स्त्रियाँ विधवा कर दी गई थीं अर्थात् उद्धत और विद्रोही सामन्तों को नष्ट कर दिया गया था। इस वंश के राजाओं के अधीनस्थ सीमान्त शासक भी विजयी थे। इस प्रकार कुछ काल बाद इस महावंश में सूर्य और मुक्तामणि के समान (उज्ज्वल चरित्र वाला) नन्नुक राजा हुआ।[3] यहां पर इस प्रकार, चन्द्र[4] से उत्पन्न चन्द्रात्रेयवंश का न केवल उदय ही बताया गया है, प्रत्युत इस वंश के गौरव और उन गुणों का उल्लेख किया गया है जिनसे यह वंश इतिहास में महान् बन गया। यशोवर्मन् के खजुराहो लेख में भी इस वंश की प्रशंसा करते हुए बताया गया है कि 'इस चंद्रात्रेय के प्रशंसास्पद वश में कोई ऐसा शासक नहीं हुआ था कि जिनमें चाटुकारिता या शक्ति की दुर्बलता ही थी; उनमें दृढ़ता भी कम न थी; और अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये उनसे दूसरों का अहित अथवा अपकार नहीं किया गया; इस वंश के राजाओं का मन भयभीत लोगों की रक्षा करने में

१—खजुराहो लेख (न० ४६—डॉ० पांडे हिस्टारिकल ऐन्ड लिटरेरी इन्स-क्रिप्शन्स) श्लोक ८, ६, १०, ११, : ब्रह्मा ब्रह्मनिधीन् पुत्रान् मरीच्य........
मुखान्मुनीन् । श्लोक ८
मध्ये तेषां........श्रीमान् अत्रि........।
चन्द्रात्रेयः समजनि मुनिस्तस्य पुत्रः पवित्र ।। श्लोक ६
ततः समभवद् वंशोऽयमत्यद्भुतः ।। श्लोक ११

२—एपी० इण्डि०, भाग १, पृ० २०८-२०६

३—धंग और जयवर्म देव का खजुराहो लेख, श्लोक १२-१४

४—महोबा लेख-एपि० इण्डि०-भाग १, पृ० २१७ : तस्मादजनि रजनीवल्लभाद् विश्वकान्तः । विशेष विवरणों के लिए देखिये एपि० इन्डि० भाग १, २,

तत्पर रहता था; और इस तरह से सभी सम्पत्तियों और साधनों से राष्ट्र को सम्पन्न कर चन्द्रात्रेयवंशजों ने मानो पृथ्वी पर सतयुग की ही स्थापना कर दी हो। इस वंश के ऐसे धवलकीर्ति वाले राजाओं की प्रशंसा ही क्या की जाय। उनमें सम्पूर्ण धरा को पालन करने तथा नष्ट करने की क्षमता थी। उसी यशस्वी वंश में उत्पन्न वे कसौटी पर कसकर खरे सोनेके समान शुद्ध क्षत्रिय थे (तन्नक्षत्रसुवर्ण-सारनिकषग्रावा)।[1] यद्यपि इन तथ्यों में आधुनिक विद्वान को अतिरंजना का आभास मिलेगा। परन्तु इन्हीं बातों को उस युग की राजनीति और ऐतिहासिक परिस्थतियों की पृष्ठभूमि में आंके तो प्रत्येक शब्द किसी न किसी तथ्य का निरूपण करता है। इन ऊपर उल्लिखित अभिलेखों में पुराणों के आधार पर ही सृष्टि का वर्णन करते हुए चन्द्र से वंशोत्पत्ति बतायी गयी है। अनुश्रुति भी ऐसा ही कहती है। चन्द्रात्रेयवंश ही इतिहास में चन्देल वंश के रूप में प्रसिद्ध हुआ।[2] विदेशी मूल की विचारधारा निर्मूल और निरी काल्पनिक अटकल है जिसे विदेशी इतिहासकारों ने जन्म दिया था। वंशोत्पत्ति का प्रमाण तो उनके क्षत्र-कसौटी पर शुद्ध होने—

क्षत्र सुवर्ण सार निकषग्रावा

से ही स्पष्ट मिलता है कि वे क्षत्रिय थे, क्योंकि क्षत्रियों का ही कर्तव्य त्रस्तों को त्राण देना था। और इसीलिए वे शस्त्र धारण करते थे —

क्षत्रियैर्धार्यते शस्त्रमार्त्तानां त्राणकारणात् ।। मार्कण्डेय पुराण १२७-१६

उनका यही स्वधर्म था जिसका पालन करना भी अभीष्ट था (स्वधर्मः परिपाल्यो, माकण्डेय पुराण, १२३-१८)।

अभिलेख स्पष्ट कहता है कि चन्द्रात्रेयवंशज शासक-सदैव इस स्वधर्म-पालन का ध्यान रखते थे। इसीलिये वे यशस्वी क्षत्रिय थे:—

त्रस्तत्राणप्रगुणमनसां................अमलयशसा भूभूजां................तन्नक्षत्र-सुवर्णसारनिकषग्राव........।।

यशोवर्मा का खजूराहो लेख, श्लोक ९-१०

१—यशोवर्मन् का खजुराहो पाषाण लेख, श्लोक ८, ९, १०

२—प्रो० कील्हार्न का मत है कि चन्द्रात्रेय चन्द्रेल्ल (चन्द्र + इल्ल) का संस्कृत स्वरूप ही था। देवलब्धि के दुदही लेख में भी चन्द्रेल्ल शब्द का उल्लेख मिलता है (इन्डि० एन्टी०, १८, पृ० २३६-२३७।
द्रष्टव्य-मित्रा-अर्ली रूलर्स ऑफ खजुराहो

अपने पूर्ण राजत्व काल में चन्देलों ने विदेशियों के आक्रमणों से त्रस्त देश और यहाँ के निवासियों को बचाने का अथक प्रयत्न किया। उनके अभिलेख प्राचीन पुराण-साहित्य की परम्परा से संवलित हैं। उनके मन्दिर कला-सौष्ठव के उत्कृष्ट प्रमाण पत्र हैं जिनमें 'विलक्षण रूपा शुक्लाभा भारती' और उसका गौरव प्रस्फुटित होता है। संक्षेप में ये ही प्रमाण साहित्य, काव्य-सौष्ठव और कला की कमनीयता तथा धर्म-धरा-भक्ति इस देश से ही सम्बद्ध करती है। परन्तु अभिलेखों और उनके सारगर्भित तथ्यों का मूल्यांकन किये बिना ही डॉ० बोस स्मिथ और रसल के ही मतों की पुनरावृत्ति करते हुए चन्देलों को गोंड या भारों से ही सम्बद्ध करते हैं। वे कहते हैं (हिस्ट्री आफ़ दि चन्देलाज पृ० ३-६) :—

"Modern scholars do not place any reliance upon the conception of the Chandellas with the lunar race of Kshatriyas........Smith thought that the Chandellas were in origin a non-Aryan people, associated with the aboriginal Gonds and Bhars........Mr. R. V. Russel supports the view of Smith and takes the Chandellas to be a section of one of the indigenous tribes which rose to power. But while Smith is inclined to the view that the Chandellas were originally Gonds, Russell thinks that they sprang from the aboriginal Bhars.... Whatever may be the weakness of Smith's arguments, his assumption that the Chandellas sprang from aboriginal Gonds and Bhars seems quite feasible........We are inclined to agree with Russel that the Chandellas probably sprang from the Bhars and not from the Gonds. Not only are Russell's arguments more convincing, but even Smith agrees that, 'it is, however, well known that the Bhars were once numerous in Banda, and the information which I have collected proves that in former times they lived in every part of the Hamirpur district, and were even found in the Jhansi district west of the Dhasan River."

इस प्रकार स्मिथ और रसल के विचारों को मान्यता दी गयी है। परन्तु प्रश्न होता है कि वि० सं० १०११ (९५३-५४ ई०) का यशोवर्मन् का खजुराहो लेख और उसके तथ्यों को प्रमाणिक साक्ष्य मानना चाहिये या इन